Bachelor of Arts (DDE)

Semester – I

Paper Code – BA1005-I

ELEMENTS OF PUBLIC ADMINISTRATION-I

लोक प्रशासन के तत्व–I

DIRECTORATE OF DISTANCE EDUCATION

MAHARSHI DAYANAND UNIVERSITY, ROHTAK

(A State University established under Haryana Act No. XXV of 1975)

NAAC 'A+' Grade Accredited University

Copyright © 2002, Maharshi Dayanand University, ROHTAK

All Rights Reserved. No part of this publication may be reproduced or stored in a retrieval system or transmitted in any form or by any means; electronic, mechanical, photocopying, recording or otherwise, without the written permission of the copyright holder.

Maharshi Dayanand University
ROHTAK – 124 001

Price : Rs. 325/-

Publisher: Maharshi Dayanand University Press

Publication Year : 2021

B. A. PUBLIC ADMINISTRATION (D. D. E.) (SEMESTER-I)

ELEMENTS OF PUBLIC ADMINISTRATION-I

PAPER CODE: BA1005-I

Marks: 80 **Time: 3 Hrs**

Note: *Examiner will be required to set NINE questions in all. Question No.1 will be compulsory which consists of 12 short-answer type questions each of 2 marks covering the entire syllabus out of which candidate will be required to attempt ten questions. In addition to Q. No.1, candidate will be required to attempt four more questions from the remaining eight questions each carrying 20 marks.*

Organisation: Meaning and basis, Principles of Organisation: Hierarchy, Span of Control, Decentralization, Supervision and Control, Communication. Public Relation: Meaning, Methods and significance; Administrative Law; Delegated Legislation; Administrative Tribunals.

Forms of Administrative Organisation: Department; Public Corporation; Parliamentary and Govt. Control over Public Corporation; Independent Regulatory Commission; Staff and Line Agencies.

Suggested Books:

- B.L. Fadia & K. Fadia, *Public Administration (Administrative Theories)*, Sahitya Bhawan Publication, Agra, 2015.
- Bidyut Chakrabarty and Prakash Chand, *Public Administration in a Globalizing World: Theories and Practices*, Sage, New Delhi, 2012.
- Smita Srivatava, *Theory and Practice of Public Administration*, Pearson, Noida (U.P), 2011.
- D.Ravindra Prasad and Y. Pardhasaradhi (eds.,), *Public Administration: Concepts, Theories and Principles* (Eng), Telugu Akademi, Hyd, 2011.
- Hoshiar Singh and Pradeep Sachdeva, *Public Administration Theory & Practice*, Pearson Education India, 2010.
- Siuli Sarkar, *Public Administration in India*, PHI, New Delhi, 2009.
- Shafritz Jay M. (ed.), *Defining Public Administration*, Jaipur; Rawat Publications, 2007.
- Dubey, R.K., *Aadhunik Lok Prashasan: Modern Public Administration*, Laxmi Narayan Agarwal Publishers, Agra, 2007.
- Sharma M.P. & Sadana B.L., *Public Administration in Theory and Practice*, Allahabad: Kitab Mehal, 2003.
- Avasthi, A. & Maheshwari, S.R., *Public Administration*, Agra: Laxmi Narain Aggarwal, 2001.
- K.K. Puri and G.S. Brara, *Public Administration: Theory and Practice*, Bharat Prakashan, Jalandhar, 2000.
- Sharma, P.D. & Sharma, H.C., *Theory and Practices of Public Administration*, New Delhi: College Book Depot, 1998.
- Naidu, S.P., *Public Administration: Concepts and Theories*, New Age International Publishers, New Delhi, 1996.
- Bhambri, C.P., *Public Administration*, Delhi: Vikas Publishers, 1991
- Bhattacharya, M. *Public Administration: Structure, Process and Behaviour*, Calcutta: The World Press, 1991.
- Negro, F.A. & Nigro, G.N. *Modern Public Administration*, New York: Harper & Row Publishers, 1980.
- Dimock, M.E. Dimock, G.O. *Public Administration*, Oxford: IBH Publishing Company, 1975.
- While, L.D., *Introduction to the Study of Public Administration*, New York: Maxmillan Company, 1958.

विषय–सूची

अध्याय	शीर्षक	पृष्ठ संख्या
1	संगठन–अर्थ एवं आधार	1
2	संगठन के सिद्धान्त	8
3	लोक सम्पर्क	32
4	प्रशासकीय कानून	43
5	प्रदत्त विधिनिर्माण – अर्थ एवं महत्त्व	46
6	प्रशासकीय – न्यायाधिकरण	55
7	प्रशासनिक संगठन के रूप	61
8	लोक निगम	66
9	स्वतंत्र नियामिकी आयोगः रचना और कार्य	72
10	स्टाफ तथा सूत्र अभिकरण	82

☆☆☆

अध्याय - 1

संगठन–अर्थ एवं आधार

Organisation - Meaning and Bases

भूमिका

एक सभ्य समाज में सामाजिक एवं मानवीय आवश्यकताओं की पूर्ति केवल संगठन के द्वारा ही पूरी हो सकती है। अतः हम यह कह सकते हैं कि संगठन उतना ही पुराना है, जितना कि मानव समाज। विद्वानों की मान्यता है कि जिस रूप में मानव समाज रहा होगा संगठन का स्वरूप वैसा ही रहा होगा। जब मानव संगठन का महत्व नहीं समझता था उस समय भीसंगठन था भले ही उसका रूप कोई और रहा हो। लेकिन एल. डी. व्हाइट (L.D. White) के इस कथन मे कोई अतिश्योक्ति नहीं है कि आज हम संगठन–मानव के युग में रह रहे हैं। स्कूल कॉलेज यूनिवर्सिटी जहाँ से हम शिक्षा ग्रहण करते हैं अस्पताल जहाँ से इलाज करवाते हैं, सरकारी विभाग जहाँ पर नौकरी करते हैं तथा सामाजिक एवं राजनैतिक संगठन, सभी किसी–न–किसी रूप में संगठनों के उदाहरण हैं। आज हमने संगठन के लक्ष्यों को अपने निर्णय–मूल्य के रूप में स्वीकार कर लिया है। व्यक्तियों को पहचानने के लिए हम सबसे पहले प्रायः यही देखते हैं कि वे किस प्रधान संगठन के सदस्य हैं। लोक प्रशासन के अन्तर्गत 'संगठन' शब्द का बोध प्रशासकीय संरचना से होता है। इसमें संगठन का अर्थ विभागों, नियमों तथा प्रशासकीय अभिकरणों की संरचना से है। प्रशासकीय संगठन एक साथ कार्य करने वाले व्यक्तियों के बीच के सम्बन्धों की एक निश्चित व्यवस्था को कहते हैं। औद्योगिक क्रान्ति के बाद से मशीनों का विकास हुआ और कार्य बड़े आकार पर होने लगा। जहां कार्यों का आकार बड़ा होगा, वहां संगठन भी अधिक बड़ा एवं व्यवस्थित होगा। प्रशासन कायों की व्यवस्था है और संगठन कार्य करने वाले लोगों के संबंधों की व्यवस्था है। अतः प्रशासन एक विस्तृत क्रिया है। संगठन जिसका एक अंश है।

संगठन का अर्थ

Meaning of Organisation

साधारण भाषा में हम कह सकते हैं कि किसी कार्य को योजनाबद्ध ढंग से करना ही संगठन है। वस्तुतः संगठन में संरचना एवं मानव सम्बन्ध दोनों निहित हैं। संगठन प्रशासन का मूल भाग है अतः लोक प्रशासन के क्षेत्र में संगठन को विभिन्न रूपों में परिभाषित किया गया है। प्रमुख परिभाषाएँ निम्नलिखित हैं

1. एल. डी. व्हाइट (L.D. White) के अनुसार, "संगठन का सम्बन्ध कर्मचारियों की व्यवस्था से है जो किसी निश्चित उद्देश्य की प्राप्ति के लिए की जाती है। यह व्यवस्था कार्यों और उत्तरदायित्वों को आपस में बाँटकर की जाती है।''
2. जे. डी. मूने (J. D. Mooney) के अनुसार, "एक सामान्य ध्येय की प्राप्ति के लिए बनाए गए प्रत्येक मानवीय समुदाय का स्वरूप संगठन है।''
3. जान, एम. गॉस (John M. Gauss) के अनुसार ''संगठन का अर्थ है कर्मचारियों की व्यवस्था करना ताकि कार्यों और उत्तरदायित्वों के उचित विभाजन द्वारा निर्धारित उद्देश्यों को सफलतापूर्वक पूरा किया जा सके।''
4. साइमन (Siinon) के विचारानुसार, ''संगठन परस्पर व्यवहार करने वाले लोगों के वर्ग का ही नाम है।

5. लूथर गुलिक (Luther Gulick) के अनुसार, ''संगठन सत्ता का औपचारिक ढाँचा है। इसके द्वारा किसी निर्धारित लक्ष्य की प्राप्ति के लिए कार्यों को विभाजित और निर्धारित किया जाता है तथा उनका समन्वय किया जाता है।

6. आर. सी. डेविस (R.C. Davis) के अनुसार, "सगठन मूलतः व्यक्तियों का एक समूह है जो सामान्य उद्देश्यों की पूर्ति हेतु एक नेता के निर्देशन में सहयोग करते हैं।''

उपरोक्त परिभाषाओं का विश्लेषण करने पर हमें इसके दो तत्त्वों का स्पष्ट संकेत मिलता है – प्रथम, प्रशासकीय ढाँचा अथवा संरचना एवं द्वितीय मानव सम्बन्ध। इसी मत का स्पष्ट करत हुए डिमॉक ने लिखा है– ''संगठन ढाँचा और मनष्य दोनों ही है।

संगठन को केवल मात्र एक ढाँचा मानना और जिन लोगों से वह बनता है उनकी उपेक्षा करना पूर्णतः अवास्तविक होगा।''

संगठन के प्रकार

Kinds of Organisation

संगठन दो प्रकार का होता है। (1) औपचारिक संगठन तथा (2) अनौपचारिक संगठन।

1. औपचारिक संगठन (Formal Organisation) :– औपचारिक संगठन उसे कहते है जिस में संगठन का स्वरूप व्यवस्थित ढंग से नियोजित तथा रूपांकित किया गया हो तथा जिस को प्राधिकारी सता (Competent Authority) द्वारा मान्यता दे दी गई हो। इस में सम्बन्धों का आकार औपचारिक रूप से चार्ट अथवा रेखाचित्र में निर्धारित कर दिया जाता है। ऐसे संगठन का विवरण संगठन–चार्ट तथा नियमावली (Manual) में कर दिया जाता है। संगठन के ढांचे की योजना औपचारिक रूप से बना ली जाती है। उच्च तथा अधीनस्थ कर्मचारियों के संभावित संबंधों का उल्लेख लिखित आचार संहिताओं (Codes of Conduct) में कर दिया जाता है। यह संगठन का वह स्वरूप है जो पर्यवेक्षक (Observer) को बाहर से दिखाई देता है। अमीताई एतजीउनी (Amitai Etzioni) के शब्दानुसार ''औपचारिक संगठन वह है जो साधारण तौर पर उस संगठनात्मक ढांचे को प्रकट करता है, जो प्रबन्ध द्वारा तैयार किया जाता है। तथा जिसमें श्रम के विभाजन तथा नियन्त्रण की शक्ति का खाका, श्रम, दंड, आचरण, नियन्त्रण आदि से संबंधित नियम तथा विनियम शामिल होते है।''

2. अनौपचारिक संगठन (Informal Organisation): जो संगठन उसमे कार्य करने वाले कर्मचारी वर्ग के वास्तविक व्यवहार के नमूने पर आधारित होता है. वह अनौपचारिक संगठन कहलाता है। जब कर्मचारी एक साथ कार्य करते है। तो उन में परस्पर एक भावात्मक तथा व्यक्तिगत संबंध का विकास होता है। यह औपचारिक संबंध से विपरीत हो सकता है इसे संगठन में अनौपचारिक सम्बन्ध के नाम से पुकारा जाता है। यह हो सकता है कि उच्च तथा अधीनस्थ कर्मचारियों का वास्तविक सम्बन्ध व्यवहार में वैसा न घटित हो जैसा कि लिखित आचार–संहिताओं के द्वारा आशा की जाती है। कार्य में लगे हुए कर्मचारी वर्ग का यह वास्तविक सम्बन्ध (Actual Relationship) ही अनौपचारिकता संगठन है। व्यक्तिगत समीकरण (Personal Eduation) मानवीय प्रकृति के अविवेक–प्रधान तत्व (Irrational Element of Human Nature), समूह तथा निहित हितों वाली शक्तियां आदि अनेक तत्व मिल कर संगठन को उसकी निधारित कार्यविधि से अलग कर देते हैं। चूंकि किसी संगठन में कार्य करने वाले विभिन्न कर्मचारियों के व्यक्तित्व भी भिन्न–भिन्न होते हैं, इसलिए इसी कारण से ही अनौपाचारिक संगठन की उत्पत्ति होती है, परन्तु मानवीय स्वभाव के कुछ स्थायी लक्षण भी होते हैं, जिनको वास्तविक संचालन के समय आंख से औझल नहीं किया जा सकता, जब कि मनुष्य के कार्यों के विस्तार का पूर्ण अनुमान नहीं लगाया जा सकता, परन्तु कुछ विशाल उत्तेजनाएं होती हैं, जो इसके व्यवहार पर विशेष प्रभाव डालती हैं। ऐसे प्रभाव के महत्त्वपूर्ण तथा सम्बन्धित

तत्त्व इस प्रकार होते हैं – मानवीय सम्मान की भावना मानवीय प्राप्ति, सुरक्षा तथा एक अच्छा जीवन स्तर व्यतीत करने की भावना आदि। इस प्रकार यह तत्त्व कर्मचारियों को संगठन में एक टीम की भान्ति कार्य करने के लिए प्रेरित करते हैं। इसलिए अनौपाचारिक संगठन को उन वास्तविक संगठनात्मक सम्बन्धों का नाम दिया जा सकता है, जो संगठनात्मक ढांचे तथा इस में कार्य करने वालों के मध्य पारस्परिक सम्बन्धों के दबाव में अन्तर्क्रिसर के परिणामस्वरूप विकसित होते हैं। साइमन (Simon) के अनुसार अनौपचारिक संगठन से यह आशय है कि संगठन में अन्तर्व्यक्तीय सम्बन्ध (Inter-personal Relations) होने चाहिए तथा यह संगठन के आन्तरिक निर्णयों को प्रभावित करते हैं. किन्तु ये बातें औपचारिक योजना में नहीं होती हैं अथवा इस योजना से मेल नहीं खाती हैं।'' संगठन का कर्मचारी– वर्ग यथार्थ में जसा व्यवहार करता है, उस वास्तविक आचरण का अनौपचारिक संगठन एक पूर्ण नमूना होता है। परन्तु यह तभी तक है जब तक कि वास्तविक व्यवहार औपारिक योजना से एक मेल नहीं हो जाता।

निष्कर्ष (Conclusion) – औपचारिक तथा अनौपचारिक संगठन के अध्ययन के पश्चात् हम इस निष्कर्ष पर पहंचते हैं कि केवल सिद्धांतों के आधार पर संगठनों को पूर्ण तथा नियोजित नहीं किया जा सकता। औपचारिक संगठन के सत्र तथा सिद्धान्त मार्गदर्शक सिद्ध हो सकते है। यथापि उनका प्रयोग परिस्थिति के व्यवहारिक संदर्भ में ही किया जा सकता है। केवल इस प्रकार से ही एक व्यवहारिक संगठन का निर्माण किया जा सकता है। किसी संगठन को पूरी तरह समझने के लिए उस के औपचारिक स्वरूप का अध्ययन ही पर्याप्त नहीं होगा। उसके वास्तविक कार्य–संचालन के विषय में तथ्यात्मक ज्ञान प्राप्त करने के लिए यह अनिवार्य है कि उस संगठन के अधिकारियों तथा कर्मचारियों के व्यक्तित्व तथा उनके पारस्परिक संबंधों का भी अध्ययन करना होगा। हमें औपचारिक संगठन के मूल्यों (Value) को कायम रखना चाहिए तथा उनके स्थान पर अनौपचारिक संगठन को ही स्थापित करने पर जोर नहीं देना चाहिए। आवश्यकता तो इस बात की है कि हम इन दोनों के अच्छे तत्वों का मिश्रण कर लें और उनके अनुसार प्रशासन का निर्माण तथा संचालन करें। इसलिए औपचारिक संगठन के सिद्धांतों को आधार मान कर मानवीय सम्बन्धो का भी योग्य स्थान तथा महत्त्व देना चाहिए। इस प्रकार का मिश्रित संगठन बहुत प्रभावशाली होगा। फिफनर (चपिदिमत) के अनुसार, ''कोई भी प्रबन्धकीय सस्था, जिसमें औपचारिक तथा अनौपचारिक संगठन संगठन की प्रधान रूप रेखाए समान एवं अनुरूप होती हैं, स्वस्थ तथा सुखद संस्था होती है।''

संगठन के आधार
Bases of Organisation

साधारण शब्दों में व्यक्तियों के मध्य कार्य को बांटने को ही संगठन कहते हैं। इसलिए कार्य को बाँटने की भिन्न–भिन्न रीतियों को ही संगठन का आधार माना जाता है। लूथर गुलिक (Luther Gulick) के मतानुसार संगठन के निम्नलिखित चार आधार होते हैं :–

(1) कार्य अथवा लक्ष्य (Purposc)
(2) प्रक्रिया (Process)
(3) संचित या लाभान्वित व्यक्ति (Persons or Clientele Served)
(4) स्थान, क्षेत्र या प्रदेश (Place, Area or Territory)

1. कार्य अथवा उद्देश्य (Purnoses) – उद्देश्य को कभी–कभी कार्य भी कह दिया जाता है। कार्य या उद्देश्य या प्रयोजन का तात्पर्य उस अन्तिम लक्ष्य से है जिसे प्राप्त करने के लिए संगठन की रचना की जाती है। प्रशासन के अति महत्त्वपूर्ण विभागों का संगठन किसी बड़े लक्ष्य की प्राप्ति के लिए किया जाता है। भारत सरकार के प्रतिरक्षा. रेल, शिक्षा, समाज–कल्याण संचार, यातायात आदि विभाग कार्य अथवा उद्देश्य को ही आधार मानकर गठित किए गए हैं। कार्य को भी दो भागों में बॉटा जा सकता है – प्रमुख कार्य (Major Functions) और गौण कार्य (Minor Functions)। प्रमुख कायों के अन्तर्गत अनेक गौण कार्य भी सन्निहित होते हैं। उदाहरणार्थ, शिक्षा एक

प्रमुख कार्य है तो उसके आगे गौण कार्यों में प्राथमिक शिक्षा, माध्यमिक शिक्षा और उच्च शिक्षा शामिल है। प्रमुख एवं गौण कार्यो के सम्बन्ध में निश्चित रूप से यह नहीं कहा जा सकता कि कोन–सा कार्य किस श्रेणी में रखा जाए। एक देश में जिसे गौण कार्य समझा जाता है, दूसरे देश में उसे प्रमुख कार्य मानकर विभाग की स्थापना की जा सकती है। वित्त विशेषज्ञ कार्यों के उपभागों (गौण कार्य) को क्रिया (Activity) कहते हैं।

लाभ (Merits) – हेल्डेन समिति और वालास के अनुसार–संगठन के इस आधार के लाभ निम्नलिखित हैं––

1. कर्मचारी लगातार एक ही प्रकार की सेवा से सम्बन्धित प्रश्नों का अध्ययन करते हैं जिससे उनके ज्ञान में वृद्धि होती है और विशेषज्ञता विकसित होती है।
2. वितरित कार्य पर्याप्त स्पष्ट और सुनिश्चित होता है इसलिए कर्मचारियों में किसी प्रकार का भ्रम पैदा नहीं होता।
3. इस प्रकार संगठित विभाग द्वारा समस्याओं को सरलतापूर्वक सुलझाया जा सकता है।
4. जब लक्ष्य के आधार पर विभाग को संगठित किया जाता है तो सामान्य जनता को उसकी जानकारी सहज रूप में प्राप्त हो जाती है। लोग सरलतापूर्वक यह जान जाते है कि उन्हें किस सेवा के लिए किस विभाग की सहायता लेनी चाहिए।
5. इस प्रकार के संगठित विभागों के कार्यो का मूल्यांकन आसानी से किया जा सकता है।
6. कर्मचारियों और अधिकारियों के बीच उत्तरदायित्व सुनिश्चित करने में सुगमता रहती है।

हानियाँ (Demerits) – संगठन के इस आधार की हानियाँ निम्नलिखित हैं

1. इस आधार की निश्चित व्याख्या नहीं की जा सकती। इसे हम चाहें तो संकीर्ण रूप में ले सकते हैं और चाहें तो व्यापक रूप में। इन दोनों की स्थितियों के बीच सन्तुलन स्थापित करना अत्यन्त कठिन है।
2. जब व्यापक लक्ष्यों के आधार पर एक विभाग का संगठन किया जाता है तो उस कार्य के अनेक पहलू भुला दिए जाते है।
3. इस पद्धति में कार्यों तथा सेवाओं के दोहराव (Duplication) की सम्भावनाएं बढ़ जाता है।
4. विभागों में कई बार परस्पर सहयोग नहीं होता।

प्रक्रिया (Process) – प्रक्रिया का अर्थ उस योग्यता, ज्ञान और कुशलता से है जो किसी विशेष कार्य को सम्पन्न करने के लिए आवश्यक है। यदि किसी संगठन की रचना विशेष योग्यता और कुशलता को ध्यान में रखकर की गई हो तो उसे प्रक्रिया पर आधारित संगठन कहेंगे। भारत में कुछ विभाग इस आधार पर गठित किए गए हैं। उदाहरण के लिए, महालेखाधिकारी का विभाग (Department of Accountant General), कानून विभाग (Department of Law) तथा इन्जीनियरिंग विभाग (Department of Engineering)। ये कार्य सामान्य प्रकृति के होते हैं और प्रायः सभी विभागों को इनकी आवश्यकता होती है।

लाभ (Merits) – संगठन के इस आधार के लाभ निम्नलिखित हैं

1. इस तरह के विभागों में विशेष ज्ञान रखने वाले लोग एक स्थान पर इकटठे होते हैं जिसमें उनके ज्ञान का उपयोग किया जा सकता है। वे आपस में एक–दूसरे से प्रशिक्षण व प्रेरणा लेते हैं।
2. इस प्रकार के संगठित विभागों में मितव्ययता (Economy) प्राप्त होती है।
3. संगठन का यह आधार एकता और समन्वय की दृष्टि से उपयोगी माना जा सकता है।
4. इस तरह गठित विभाग के बारे में बजट तथा लेखा कार्य के लिए आवश्यक आँकड़ें आसानी से प्राप्त किए जा सकते है।

5. प्रक्रिया के आधार पर जब विभागों को संगठित किया जाता है, तो व्यावसायिक सेवाओं का भविष्य उज्ज्वल बन जाता है।

हानियाँ (Demerits) – संगठन के इस आधार की मुख्य हानियाँ निम्नलिखित हैं

1. एक कार्य को पूरा करने के लिए विभिन्न विभागों की सेवाएं प्राप्त करनी पड़ेंगी जिससे समन्वय करने का कार्य काफी जटिल हो जाएगा।
2. यदि कोई एक प्रक्रिया भी असफल हो जाए तो सारे विभाग के कार्य निरर्थक हो जाएंगे।
3. तकनीकी प्रक्रियाओं की कुशलता से ही प्रशासन में कुशलता नहीं आ सकती। इसके लिए अनुभव की आवश्यकता है।
4. विभागों के अध्यक्ष अपना महत्व दिखाने के लिए और अनावश्यक कार्य करते हुए अनेक विभागों में घूमते हैं जिससे कार्यों में विलम्ब और धन खर्च होता है।
5. प्रक्रिया पर आधारित विभाग के अध्यक्षों में यदि योग्यता और विशेषता का गर्व पैदा हो जाए तो वे लोकप्रिय नियन्त्रण को मानने से इन्कार करने लगते हैं।
6. इस प्रकार संगठित विभागों में नेतृत्व की समस्या गम्भीर बन जाती है। विशेषज्ञों में प्रशासकीय क्षमता नहीं होती और जो लोग प्रशासन में कुशल होते हैं वे प्रायः विशेषज्ञ नहीं होते।

वालास (Wallace) का कहना है कि प्रक्रिया के आधार पर विभागों का संगठन करने से जो हानियाँ होती हैं, वे लाभों से खतरनाक हैं।

3. सेवित या लाभान्वित व्यक्ति (Persons or Clientele Served)–जब संगठन की रचना एक विशेष प्रकार के वर्ग की सेवा के लिए की जाती है तो उसे इस श्रेणी में रखा जाता है। सामान्यतः यह वर्ग प्राकृतिक, सामाजिक, आर्थिक या मानवीय विपत्ति का शिकार होता है। राज्य के कल्याणकारी स्वरूप के कारण इस प्रकार के संगठनों में वृद्धि हई है। हरियाणा हरिजन कल्याण निगम, जिला सैनिक बोर्ड, महिला एवं बाल–कल्याण विकास विभाग, समाज–कल्याण निदेशालय, अनुसूचित जाति और जनजाति के लिए गठित कल्याण विभाग, केन्द्रीय समाज–कल्याण बोर्ड एवं भारत सरकार का कल्याण मन्त्रालय इसके उदाहरण हैं।

इन संगठनों के विशेष वर्ग हरिजन, सैनिक, महिला, बच्चे, अपंग, असहाय, वृद्ध व अनुसूचित जाति व अनुसूचित जन–जाति के लोग हैं।

लाभ (Merits) – संगठन के इस आधार के लाभ निम्नलिखित हैं –

(1) वर्ग विशेष के लिए सम्पादित की गई सेवाओं के मध्य समन्वय आसानी से हो जाता है।
(2) एक वर्ग की सभी समस्याएं प्रायः एक ही विभाग में सुलझ जाती हैं।
(3) सेवित व्यकितयों और प्रशासन के बीच सीधा सम्बन्ध स्थापित हो जाता है।
(4) इन विभागों द्वारा लाभान्वित व्यक्ति आपस में मिलकर एक राजनीतिक दबाव–समूह का निर्माण कर लेते है जिससे उनके मध्य एकता की भावना का विकास होता है।
(5) इस प्रकार का विभाग अनेक सेवाएं सम्पादित करता है जिससे कर्मचारियों की विविध योग्यताओं का विकास होता है।

हानियाँ (Demerits) संगठन के इस आधार की हानियाँ निम्नलिखित हैं –

(1) इस प्रकार का विभाग सार्वजनिक रूप से लागू नहीं किया जा सकता और छोटे–छोटे विभागों की स्थापना का डर रहता है, जैसे भिक्षावृत्ति मन्त्रालय और वेश्यावृत्ति मन्त्रालय। इसका परिणाम यह होता है कि बौने

प्रशासन (Lilliputian Administration) की प्रवृत्ति उत्पन्न हो जाती हैं, अर्थात् अनेक छोटे–छोटे विभाग स्थापित कर दिए जाते हैं।

(2) इन विभागों का कार्य–क्षेत्र आसानी से परिभाषित नहीं किया जा सकता।

(3) इस प्रकार गठित किए गए विभागों के कर्मचारियों में वाँछित कुशलता और योग्यता नहीं पाई जाती, क्योंकि विभाग एक सीमित समुदाय की अनेक समस्याओं से सम्बन्धित रहता है जिसके कारण इसके कार्यकर्त्ता बहुत से विषयों के जानकार तो बन जाते हैं, किन्तु किसी एक विषय के विशेषज्ञ नहीं बन पाते।

(4) ये विभाग प्रशासन में एक दबाव–समूह का कार्य करते हैं और किसी प्रशासनिक सुधार, जो उनके विरुद्ध होता है, का विरोध करते हैं।

4. **स्थान, क्षेत्र या प्रदेश (Place, Area or Territory)** – यह सम्भव है कि प्रशासन के सभी क्षेत्रों या स्थानों की कुशलतापूर्वक सेवा न की जा सके क्योंकि भौगोलिक दृष्टि से ये क्षेत्र कार्यालय (Head Office) से काफी दूर स्थित होते हैं। कई बार पृथक् क्षेत्रों की अपनी अलग–अलग समस्याएं होती हैं, जिनका निवारण करने के लिए एक विशेष प्रकार के प्रशासकीय विभाग की आवश्यकता होती है। इस आधार को संगठन का "भौगोलिक आधार" भी कहा जाता हैं।

भारत में विदेश मन्त्रालय के विभिन्न सम्भाग (Divisions) तथा रेलवे मन्त्रालय के विभिन्न क्षेत्र (Zones) इसके उदाहरण हैं।

लाभ (Merits) – संगठन के इस आधार के लाभ निम्नलिखित हैं–

(1) इस प्रकार के संगठन ऐसे दूरवर्ती क्षेत्रों के लिए उपयुक्त माने जाते हैं, जहाँ यातायात और संचार के साधनों का पूर्ण विकास नहीं हो पाया है।

(2) इस प्रकार के संगठन में समन्वय की समस्या नहीं रहती।

(3) इस प्रकार के सगंठन में कार्य में देरी का भय नहीं रहता।

(4) इस प्रकार के सेंठन में सम्बन्धित क्षेत्र की आवश्यकताओं के अनुरूप नीतियों का निर्माण किया जाता है।

(5) भिन्न–भिन्न क्षेत्रों के लोग अपनी भावनाओं तथा आवश्यकताओं की अभिव्यक्ति सुगमतापूवक कर सकते हैं।

(6) विभागों के क्षेत्रीय आधार पर संगठित होने से पत्र–व्यवहार एवं आवागमन के अनावश्यक व्यय को कम किया जा सकता है।

हानियाँ (Demerits) – संगठन के इस आधार की हानियाँ निम्नलिखित हैं –

(1) इस आधार पर संगठित विभागों के काण राष्ट्रीय नीतियों के प्रशासन मे एकरूपता नहीं रह पाती। उदाहरण के लिए केन्द्रीय स्तर पर एक शिक्षा विभाग न बनाकर भौगोलिक आधार पर अनेक शिक्षा विभाग बना दिए जाएं तो समूचे देश के लिए एक जैसी शिक्षा नीति नहीं अपनाई जा सकती।

(2) देश में क्षेत्रीयता एवं फूट की भावनाओं को प्रोत्साहन मिलता है।

(3) इस प्रकार के संगठन में एक क्षेत्र विशेष के लिए अनेक प्रकार की सेवाएँ प्रदान की जाती हैं जिससे श्रम विभाजन और विशिष्टिकरण को खतरा रहता है।

(4) क्षेत्रों पर आधारित विभाग क्षेत्रीय हित और दबाव–समूहों से प्रभावित होकर कार्य करते हैं और राष्ट्रीय हितों को भुला देते हैं।

किस आधार को सही माना जाए?

Which Base Should be Considered Right?

संगठन के विभिन्न आधारों का अध्ययन करने के बाद यह स्पष्ट हो जाता है कि कोई भी एक आधार पर्याप्त नहीं है। प्रत्येक आधार की अपनी कुछ हानियाँ और लाभ है। किसी भी आधार को सर्वश्रेष्ठ नहीं कहा जा सकता। चारों ही आधारों का परस्पर गहरा सम्बन्ध है। यदि हम कृषि विभाग का उदाहरण सामने रखे तो यह स्पष्ट हो जाता है।

विभाग का नाम	आधार
कृषि	1. लक्ष्य या कार्य–कृषि सम्बन्धी समस्याओं को हल करना।
	2. प्रक्रिया–कृषि सम्बन्धी विशेष ज्ञान का प्रसार।
	3. सेवित व्यक्ति–किसान।
	1. क्षेत्र–भिन्न–भिन्न क्षेत्रों में गठित कृषि ज्ञान केन्द्र

अतः यह एक गम्भीर समस्या है कि किस विभाग को किस आधार पर गठित हुआ मानें। हमें ध्यान में रखना चाहिए कि हमारा मुख्य लक्ष्य क्या है और हम क्या प्राप्त करना चाहते हैं? यदि हमारा प्रमुख लक्ष्य कार्यकुशलता और आर्थिक बचत है तो विभाग को प्रक्रिया के आधार पर संगठित करना चाहिए। यदि हमारा लक्ष्य कुछ विशेष वर्गों की समस्याएं हैं, तो सेवित व्यक्तियों के आधार पर विभाग का संगठन किया जा सकता है। इसी प्रकार यदि एक क्षेत्र अथवा प्रदेश की विशेष समस्याएं हों या दूरी के कारण संचार के साधनों की कमी है तो क्षेत्र के आधार पर विभाग का संगठन किया जा सकता है। संगठन का गठन करते समय आधारों के सन्दर्भ में निम्नलिखित तथ्यों और शर्तों को ध्यान में रखना चाहिए।

1. परिस्थितियाँ और मुख्य उद्देश्य निर्णायक तत्त्व होते हैं।
2. किसी भी आधार को कठोरता के साथ लागू नही किया जा सकता। प्रत्ये की अपनी सीमाएं हैं।
3. प्रत्येक आधार एक–दूसरे के पूरक (Supplementary) हैं।
4. कार्य का आधार (Basis of Functions) एक सर्वमान्य आधार है।
5. प्रशासकीय सुधार आयोग के अनुसार बौद्धिकता और प्रबन्धकीकरण (Retionality and Manageability) को संगठनों के आधारों की सिफारिश करते समय ध्यान में रखना चाहिए
6. विभागों के संगठनों में नीचे से लेकर ऊपर तक संगठन के आधारों की मात्रा में फर्क पड़ता रहता है।

महत्वपूर्ण प्रश्न

1. संगठन क्या है? इसके आधारों का वर्णन कीजिए।

अध्याय - 2

संगठन के सिद्धान्त

Principles of Organisation

भूमिका

संगठन उद्देश्य की प्राप्ति एवं कार्यकुशलता के लिए यह अपेक्षित है कि संगठन की संरचना के लिए आधारभूत सिद्धांत विद्यमान हों। निश्चित या सार्वभौमिक सिद्धांतों से ही कोई विषय विज्ञान कहा जा सकता है। लोक प्रशासन के विद्वानों ने संगठन से संबंधित सिद्धांतों का प्रतिपादन किया जो जो टेलर, लुथर गुलिक, हेनरी फेयोल, मूने एव रिले इत्यादि की कृतियों में देखे जा सकते है। यद्यपि वे सिद्धांत भौतिक विज्ञान के समकक्ष नहीं है। एल.डी. व्हाइट के अनुसार ये सिद्धांत वास्तव में व्यवहार के कुछ कार्य नियमों का सुझाव देते है जो कि विस्तृत अनुभव प्राप्ति के फलस्वरूप बहुत कुछ मान्य बन गये है।'' हर्बट साइमन जैसे विद्ववानों ने संगठन के इन सिद्धांतों को केवल कहावते अथवा कल्पित कथांए कहा है। उनके शब्दों में अधिकतम प्रशासकीय सिद्धांतों में दुर्भाग्यवश कहावतों का दोष पाया जाता है। प्राय प्रत्येक सिद्धांतों के लिए हमें उतना ही सत्य प्रतीत होने वाला तथा स्वीकार्य विरोधी सिद्धांत मिल सकता है।घ्संगठन में संबंधित सिद्धांतों के बार–बार प्रचलन ने रहने के कारण ये अनुभवजन्य सत्य सिद्धांत हो गये है। हेनरी फेयोल के शब्दों में ''ये सिद्धांत ऐसे सत्य है जो सिद्ध मान लिये गये है और जिन पर विश्वास किया जा सकता है।''

अलग–अलग विद्वानों ने संगठन के लिए अलग–अलग सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया है। हेनरी फेयोल ने संगठन सम्बन्धी चौदह सिद्धान्त माने हैं। ये हैं – कार्य विभाजने, प्राधिकार, अनुशासन, आदेश की एकता, निर्देश की एकता, सामान्य हित को प्राथमिकता, पारिश्रमिक, केन्द्रीयकरण एवं विकेन्द्रीकरण, पदसोपान, सुनीति, स्थिर कार्यालय, पहल एवं मनोबल। लुथर गुलिक ने दत्त सिद्धान्त बताएं हैं जो इस प्रकार हैं – कार्य विभाजन अथवा विशेषज्ञता, विभागीय संगठनों के आधार, श्रेणी क्रम के माध्यम से सययोजन, सचेष्ट संयोजन समितियों के जरिये समायोजन, विकेन्द्रीकरण, आदेश की एकता, कर्मचारियों का श्रेणी विभाजन प्रतिनिधित्व और नियंत्रण सीना मूने एवं रिले ने चार सिद्धान्त – कार्य विभाजन, पद–सोपान, समन्वय तथा स्टाफ सूत्र सिद्धान्त बतलाये हैं। सामान्यता संगठन के लिए निम्नलिखित सिद्धान्तों को महत्त्वपूर्ण माना जाता है –

(1) पदसोपान
(2) आदेश की एकता
(3) नियन्त्रण का क्षेत्र
(4) केन्द्रीयकरण व विकेन्द्रीकरण
(5) एकीकृत बनाम स्वतन्त्र व्यवस्था

पदसोपान

(Hierarchy)

औपचारिक संगठन से सम्बन्धित सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त पदसोपान है। प्रो. मूने ने इसे, "संगठन का सार्वभौमिक सिद्धान्त कहा है। पदसोपान की अनुपस्थिति में संगठन की कल्पना नहीं की जा सकती। संगठन की औपचारिक संरचना का विश्लेषण उसके पदसोपान की स्थिति का अध्ययन कर लेने से ही संभव है। यह संगठन के

लम्बवतीय सत्ता एवं उत्तरदायित्वों से सम्बन्ध रखता है। औपचारिक या यान्त्रिक विचारधाराओं के समर्थक इसे औपचारिक संगठन का आधार मानते हैं। ओम बर्न एवं जी एम. क्टालकर के शब्दों में, ''औपचारिक संगठन पदसोपानीय संरचना होती है (संगठन पिरामिड की तरह लगता है) तथा सगठनीय ज्ञान पदसोपान के सर्वोच्च शिखर पर विद्यमान रहता है।'' संगठन पदसोपान के सिद्धान्त पर संगठित होने पर ही कुशलतापूर्वक कार्य कर सकता है। लोक प्रशासन के अधिकांश विद्वान पद––सोपान के महत्त्व को स्वीकार करते है। एम. रुथनास्वामी के शब्दों में, "पदसोपान के कारण संगठन में निश्चितता तथा सुरक्षा को बढ़ावा मिला है। परन्तु इसके कारण प्रभावशाली नीति और शीघ्र कार्यकरण को एक गहरा धक्का भी लगा है।

पदसोपान का अर्थ

अंग्रेजी भाषा में ''हेरारकी" शब्द का अर्थ "पद श्रेणी के आधार पर धर्म पुरोहितों का संगठन'' है। पदसोपान को विभिन्न नामों जैसे – क्रमिक प्रक्रिया सिद्धान्त'', ''पिरामिडिकल वे'' तथा ''क्रमों की श्रंखला'' या ''सीढी प्रणाली" से पुकारा जाता है। एल. डी. व्हाइट के अनुसार "संगठन की संरचना में ऊपर से लेकर नीचे तक उत्तरदायित्वों के स्तरों द्वारा जब अधीनस्थ जैसे सम्बन्धों का व्यापक प्रयोग किया जाता है. तब वहाँ "पदसोपान'' बन जाता है।'' इस प्रकार पदसोपान का सम्बन्ध सर्वोच्च अधीनस्थ सम्बंधों से हैं। सी. पी. भाग्भरी के शब्दों में "पदसोपान संगठन में ऊपर से लेकर नीचे तक सर्वोच्च अधीनस्थ सम्बन्धों की जुडाव व्यवस्था है। यह संगठन में सार्वभौमिक रूप से प्रयोग में लायी जाने वाली पद्धति है, जिसके द्वारा कर्तव्यों एवं उत्तरदायित्वों का संगठन के अनेक स्तरों में विभाजन रहते हए संगठन एकता सूत्र में बंधा रहता है। पाल एच. एप्पलबी के शब्दों में, "पद सोपान वह साधन है जिससे स्रोतों का उचित भागों में विभाजन, कर्मचारियों का चयन तथा उन्हें कार्य सौंपे जाते हैं। इससे क्रियाओं या कार्यो को गति मिलती है. उनकी समीक्षा की जाती है तथा उनमें आवश्कतानुरुप सशायम किये जाते है।

जेम्स मून ने पदसोपान को "क्रमिक प्रक्रिया" का सिद्धान्त कहा है। मूने के शब्दों में ''संगठन में इसका अर्थ कर्तव्यों का कार्यो के अनुरुप निर्धारण न किया जाकर सत्ता एवं उत्तरदायित्व के अनुसार निर्धारण है। मूने ने इस सिद्धान्त को सार्वभौमिक मानते हुए यह बताया है कि जब कभी भी संगठन (चाहे वह दो व्यक्तियों का ही हो) में सर्वोच्च–अधीनस्थ विद्यमान रहते हैं, वहाँ क्रम का सिद्धान्त होगा। क्रमिक प्रक्रिया का तात्पर्य क्रमिक रूप में संगठन के अधिकारियों एवं कर्मचारियों के पदों के अनुरूप उत्तरदायित्वों का निर्धारण है।

पदसोपान को "क्रमों की श्रृंखला" भी कहा जाता है क्योंकि इसके अन्तर्गत संगठन में कर्तव्यों को श्रेणीबद्ध करना होता है।

संगठन में आन्तरिक सम्बन्धों के संदर्भ में पदसोपान के सिद्धान्त को ''सीढ़ी प्रणाली" भी कहा जाता है। लेथन के शब्दों में "पदसोपान एक व्यवस्थित संरचना है जिसमें सर्वोच्च अधीनस्थ सीढ़ी के कदमों के रूप में जुड़े हैं। जिस प्रकार सीढ़ी पर चढते हुए हम ऊपर शिखर तक पहुँच सकते हैं अगर सीढ़ी के क्रमों का उल्लंघन करते है तो गिरने का खतरा रहता है। इसी प्रकार संगठन के शिखर पर संगठन के प्रत्येक स्तर को पार करके ही पहुंचा जा सकता है। इसे "उचित मार्ग प्रक्रिया'' का सिद्धान्त कहा जाता है।

पदसोपान को ''पिरमिडीकल वे" भी कहा जाता है क्योंकि संगठन का प्रशासकीय ढांचा "पिरामिड'' या कोण की तरह रहता है। संगठन में एक शिखर एवं उसके नीचे सीढ़ी दर सीढ़ी निम्न स्तर बनते जाते हैं। संगठन के कार्य अनेक भागों में विभाजित, उपविभाजित हो जाते हैं, परन्तु शिखर पर एक व्यक्ति होता है।

पदसोपान की व्याख्या

पद सोपान में क्रम के शिखर पर एक बिन्दु (मुख्य निष्पादक) होता है जहाँ सत्ता के सूत्र तथा उत्तरदायित्व केन्द्रित होते है इसमें सत्ता के सूत्र ऊपर एवं नीचे दोनों ओर जाते हैं जिससे हर कर्मचारी अन्तिम रूप से संगठन

के प्रधान के प्रति जवाबदेह हो जाता है। इस पद्धति में सत्ता और उत्तरदायित्व की एक डोर का छोर शिखर पर रहता है, मध्यभाग के विभिन्न पदाधिकारियों व कर्मचारियों से गुजर कर दूसरा छोर निम्न स्तर पर आसीन कर्मचारियों के पास पहुँच जाता है। प्रशासकीय त्रिकोण या पिरामिड की चोटी पर मुख्य निष्पादक होता है जिसके अधीन प्रशासकीय विभागों के अध्यक्ष, प्रशासकीय निर्देशक, उपविभागों के अध्यक्ष तथा कर्मचारी आते हैं। एक पद सोपान वाले संगठन के ढांचे एवं उसकी कार्य प्रणाली को निम्न प्रकार से समझाया जा सकता है।

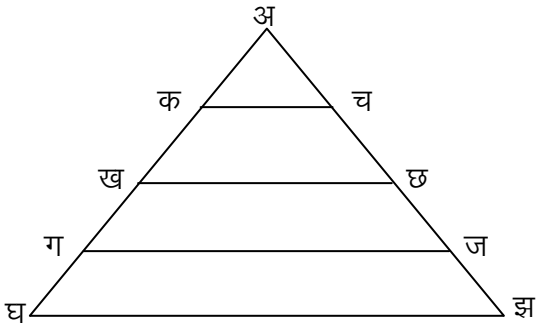

''अ'' पूरे संगठन का अध्यक्ष है। ''क'' एवं "च'' उसकी अधीनस्थ अधिकारी हैं। "क" एवं "च" के अधीन "ख" एवं "छ" अधिकारी आते है। इस प्रकार संगठन के निचले स्तर पर "घ" एवं ''झ'' हैं। अ को कोई आदेश या निर्देश देना हो तो वह "क" एवं "च'' को देगा एवं क एवं च अपने अधीनस्थों को। इस प्रकर संगठन में उचित मार्ग सिद्धान्त का अनुपालना होगा।

पदसोपान की विशेषताएँ

1. नेतृत्वः

पदसोपान में नेतृत्व की महत्त्वपूर्ण भूमिका रहती है। यह संगठन में समन्वय स्थापित करता है। नेतृत्व केवल शिखर पर ही केन्द्रित नहीं रहता अपितु 'वह तरल होकर ऊपर से नीचे तक धारा में प्रवाहित होता है तथा संगठन में एकता स्थापित करता है।

2. सत्ता का प्रत्यायोजनः

पदसोपानीय संगठन में शिखर का सर्वोच्च नेता अकेला सम्पूर्ण सत्ता का उपयोग नहीं कर सकता। उसे अनेक अधीनस्थ अधिकारियों को क्रम अथवा सोपान के अनेक चरणों पर सत्ता का प्रत्यायोजन करना होता है। वह जिस कार्य के लिए जिसे सत्ता प्रत्यायोजित करता है वह उस कार्य के लिए प्रवर या उच्च अधिकारी के प्रति उत्तरदायी होता है।

3. कार्य विशेषीकरणः

पदसोपान की कार्यात्मक परिभाषा से तात्पर्य है कि नेता या उच्च अधिकारी प्रत्येक अधीनस्थ कर्मचारी को उसके पद के अनुसार विशिष्ट कार्य सौंप देता है। कार्य सौंपने के साथ ही सत्ता एवं उत्तरदायित्व का स्पष्टतया निर्धारण कर दिया जाता है।

पदसोपान के विभिन्न रूप

लोक प्रशासन के विद्वानों ने पदसोपान के अलग–अलग रूपों की विवेचना की है। पिफनर एवं शेरवुड ने औपचारिक संगठन के लिए पदसोपान का निम्न प्रकार से चित्रण किया है :–

(पिफनर एवं शेरवुड द्वारा प्रस्तुत पर सोपान का चित्रण)

मूने एवं रैले के अनुसार

पंखानुकृत पदसोपान :

पदसोपानीय संगठन में शीघ्र निर्णय, जल्दी कार्यवाही तथा वित्तीय जबावदेहता के लिए पंखानुकृति पदसोपान की प्रस्तुति की जाती है–

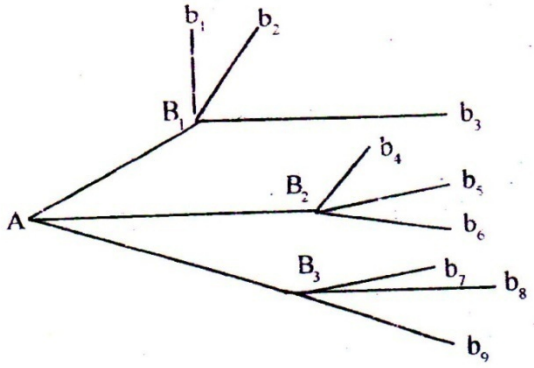

इस प्रकार का पदसोपान केवल तकनीकी प्रकार के कार्या वाले संगठन जैस पुल निर्माण, परमाणु प्लांट इत्यादि में उपयोग है, सरकारी संगठनों के लिए नहीं।

पदसोपान के गुण–दोष

पदसोपान औपचरिक संगठन के लिए एक सार्वभौमिक सिद्धान्त है। एल. डी. व्हाइट के शब्दों में, "पदसोपान संगठन के विभिन्न संबंधित केन्द्रों में एक कड़ी के समान है जो सत्ता के निम्न स्तरों तक प्रत्यायोजन द्वारा कार्य संचालन को सरल एवं कुशल बनाता है।'' पदसोपान के निम्नलिखित गुण हैं –

1. संगठनीय एकीकरण :

मुख्य निष्पादक के बाद एक जंजीर की कड़ियों के सदृश संगठन अपने सभी स्तरों के साथ जुड़ा रहता है। एम. पी. शर्मा शब्दों में ''पदासोपान एक ऐसा धागा है, जो संगठन के सभी सूत्रों को जोड़ता है।''

2. उत्तरदायित्व का निर्धारणः

इस प्रक्रिया में ऊपर से नीचे तक सूचनाएं, पत्र–दावहार व संदेश भेजना सुविधाजनक हो जाता है। संगठन में सभी को पता रहता है कि उनसे व्यक्तिगत तौर पर किस प्रकार कार्य को आशा की जा रही है एवं उसे क्या करना है।

3. प्रत्यायोजनः

पदसोपान सता तथा उत्तरदायित्व के प्रत्यायोजन के सिद्धान्त पर आधारित रहता है। इसमें सत्ता के उपकेन्द्र स्थापित हो जाते हैं एवं कार्यों का एक स्थान पर जमाव नहीं होता है। निम्न अधिकारियों को छोटे–मोटे निर्णय लेने का अधिकार प्राप्त हो जाता है, जो उनके ज्ञान व प्रगति में सहायक होता है।

4. उचित मार्ग का सिद्धान्तः

उचित मार्ग के सिद्धान्त की स्थापना का परिणाम यह होता है कि कोई भी प्रक्रिया लुप्त नहीं होती और न ही माध्यमिक कड़ियों की उपेक्षा हो सकती है। इससे संगठन की गतिविधियों की समस्त अधिकारियों को जानकारी हो जाती है।

5. आदेश की एकता का सिद्धान्तः

इस सिद्धान्त के अन्तर्गत यह स्पष्ट रहता है कि संगठन में किस अधिकारी एवं कर्मचारी को किससे आदेश प्राप्त करना। वह केवल एक ही व्यक्ति का अधीनस्थ होता है। इस प्रकार पदसोपान द्वारा संगठन के उद्देश्यों को कार्यविभाजन द्वारा प्राप्त किया जाता है तथा मतभेदों को दूर करके संगठन में सामंजस्य स्थापित किया जाता है।

पदसोपान संगठन में प्रक्रिया एकता, निश्चयता तथा सुरक्षा प्रदान करता है, परन्तु इससे शीघ्र निर्णय नहीं हो पाते हैं जो संगठन के परिणामों को प्रभावित करते हैं। पद सोपान के निम्नलिखित दोष बताये जाते हैं–

1. **निर्देशन ऊपर से नीचे** : पद सोपानीय व्यवस्था में निर्दशन ऊपर से नीचे की ओर चलते हैं। अधीनस्थों से यह अपेक्षा की जाती है कि वे मशीन की तरह बिना अपनी इच्छाओं के प्रयोग के उन्हें लागू करें।
2. **कठोर** : इससे संगठन में कटोरता आ जाती है तथा यह गतिशील मानवीय सम्बन्धों के विकास के लिए उपयुक्त नहीं है
3. **लाल फीताशाही** : "उचित मार्ग के सिद्धान्त" के कारण कार्यों में अत्याधिक विलम्ब हो जाता है। इससे लाल–फीताशाही बढ़ती है।

पदसोपान को प्रभावशाली बनाने एवं इसकी कमियों को दूर करने के लिए उपाय बताये गये है। उरविक के शब्दों में, प्रत्येक संगठन में पदसोपान व्यवस्था ठीक उसी प्रकार अनावश्यक है जिस प्रकार घर में नाली, परन्तु इस माध्यम को आमतौर पर संचार के एक माध्यम के रूप में प्रयोग लाना उसी प्रकार आवश्यक है जिस प्रकार नाली में समय व्यतीत करना।''

पदसोपान में अनावश्यक देरी को रोकने के लिए अल्प मार्गों का सुझाव दिया जाता है। व्यवहार में इस प्रकार सम्बन्ध स्थापित किया जाता है कि सत्ता का उल्लंघन भी न हो व कार्य भी शीघ्रता के साथ सम्पन्न हो सके। हेनरी फेयोल ने "गंगालान'' का सुझाव दिया है जिसके अनुसार मुख्य निष्पादक की अनुमति से क्षितिजीय सम्बन्ध स्थापित किये जा सकते हैं। सत्ता के दो तटो के बीच एक पुल बना कर ऐसे सम्बन्ध स्थापित किये जा सकते हैं

इसे ''फयोल ब्रिज'' भी कहा जाता है। दूसरा उपाय "स्तर कूदने'' का है जिसके अन्तर्गत अनावश्यक मध्यम स्तरों को छोड़कर सम्पर्क स्थापित किया जा सकता है।

संगठन में पदसोपान के व्यवहारिक रूप में जैसा कि अर्ललेथम जैसे आलोचक मानते हैं कि सर्वोच्च अधिकारियों का नियन्त्रण अव्यावहारिक हो सकता है क्योंकि यह जरूरी नहीं कि सभी मुख्य निष्पादकों को संगठन का समस्त एवं विस्तृत ज्ञान हो। व्यवहार में संगठन पदसोपान के औपचारिक सम्बन्धों के अनुसार पूर्णतया कार्य नहीं करता है। नीग्रो के शब्दों में, ''संगठन एक सामाजिक व्यवस्था भी है जिसमें सदस्य अपना व्यवहार विकसित करते हैं जो सरकारी निर्देशों से भिन्न होता है। अतः संगठन केवल औपचारिक रूप में कार्य नहीं कर सकता। अनौपचारिक रूप में सर्वोच्च अधीनस्थ परस्पर सद्भावना एवं विश्वास के आधार पर भी कार्य करते हैं।

आदेश की एकता
(Unity of Command)

संगठन के सिद्धान्तों में पदसोपान से जुड़ा हुआ आदेश की एकता एक महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त है। पदसोपानीय संगठन में सर्वोच्च अधीनस्थ सम्बन्ध पूर्णतया निर्धारित एवं स्पष्ट होते हैं। ऐसे संगठनों में कार्यो की प्रकृति में लम्बवती अन्तर दिखाई देता है। यह स्पष्ट रहता है कि संगठन में किस व्यक्ति को किस से आदेश प्राप्त करना है। अतः आदेश की एकता का सिद्धान्त पदसोपान के सिद्धान्त का पूरक कहा जा सकता है। वर्तमान समय में संगठनीय जटिलताओं एवं विशेषीकरण के संदर्भ में यह बड़ा कठिन हो जाता है कि एक निश्चित अधिकारी से सामान्य एवं तकनीकी दोनों प्रकार के आदेश कैसे प्राप्त किया जायें।

अर्थ

संगठन की एक महत्त्वपूर्ण समस्या उसमें लगे व्यक्तियों से सहयोग प्राप्त करने एवं उनके कार्यों में समन्वय करने की है। यह आदेश की एकता के सिद्धान्त द्वारा संभव हो सकता है। आदेश की एकता का अभिप्राय है कि संगठन में प्रत्येक कर्मचारी को यह पता रहना चाहिए कि उन्हें किन से आदेश प्राप्त करना है। संगठन के सभी स्तरों पर सर्वोच्च अधीनस्थ सम्बन्ध पाये जाते है। संगठन में एक व्यक्ति एक ही व्यक्ति के अधीनस्थ होगा। हेनरी फेयोल के अनुसार, "एक कर्मचारी एक ही उच्च अधिकारी से आदेश प्राप्त करेगा। इसी प्रकार पिफनर एवं प्रेथस्थ के अनुसार, ''कोई भी संगठन का सदस्य एक ही को अपना प्रतिवेदन देगा और एक ही नेता होगा। इससे कर्मचारी परस्पर विरोधी आदेशों से मुक्त रहेंगे. क्योंकि एक से अधिक व्यक्तियों से आदेश प्राप्त करने का अर्थ परस्पर विरोधी आदेशों को प्राप्त करना होगा। जिससे कर्मचारियों के कार्यों में अस्पष्टता एवं अनिश्चितता हो जायेगी। संगठन में उद्देश्यों एवं भूमिकाओं का स्पष्ट होना आवश्यक होता है अन्यथा प्रशासन भ्रान्तियों, भूलों एवं भटकावों का घर हो जायेगा। परस्पर दो विरोधी आदेश संगठन को अकार्यकुशल बना देंगे तथा संगठन गतिहीन हो जायेगा। अतः आदेश की एकता का सिद्धान्त संगठन को इन समस्याओं से मुक्त रखने के लिए आवश्यक है।

Merits & Denierits of Unity of Command

इस सिद्धान्त के निम्नलिखित लाभ हैं.

1. इस सिद्धान्त के अन्तर्गत आदेश केवल एक अधिकारी द्वारा किये जाते है। इसलिए इन में विरोधात्मक आदेश नहीं होते। इसके फलस्वरूप आदेशों के सम्बन्ध में भ्रम उत्पन्न नहीं होता।
2. इसके अनुसार, कर्मचारियों को देखभाल करने वाला अधिकारी ही आदेश जारी करता है, इसलिए कर्मचारी के कार्यो का निरीक्षण एवं पर्यवेक्षण प्रभावपूर्ण रीति से किया जाता सकता है।
3. इस सिद्धान्त की सहायता से भिन्न–भिन्न कार्यों के लिए स्पष्ट रूप से उत्तरदायित्वों को निश्चित किया जा सकता है। इससे संगठन की कार्य–कुशलता बढ़ती है।

इस सिद्धांत के इन लाभों के होते हुए भी प्रशासन में उसक समय कठिनाई उत्पन्न हो जाती है, जब संगठन में कार्य करने वाले कर्मचारियों को अपने उच्च अधिकारियों के आदेशों की पालना करने के साथ–साथ तकनीकी अधिकारियों अथवा विशेषज्ञों के आदेशों की पालना करनी पड़ती है। जैसे एक डाक्टर प्रशासकीय रूप से उसी स्थानीय संस्था के प्रति उत्तरदायी है. जिसके उसे नियुक्त किया है। नियक्त किया है किन्तु अपने व्यवसाय (Profession) के कारण वह लोक स्वास्थ्य निर्देशक स्वास्थय निर्देशक (Director Public Health) के प्रति भी उत्तरदायी है। इसलिए ऐसे भी अवसर भी हो सकते हैं जब एक ही व्यक्ति के दो अधिकारी हों इसलिए टेलर (Taylor) ने द्विमुखी पर्यवेक्षण (Dual Supervision) का सुझाव दिया है। आधुनिक वैज्ञानिक युग में लोक प्रशासन के प्रत्येक क्षेत्र में तकनीकी अधिकारी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं, इसलिए उनके आदेशों की अवहेलना नहीं की जाती। ऐसी स्थिति में आदेश की एकता के सिद्धान्त में कुछ आवश्यक संशोधन हैं। इसी बात को ध्यान में रखते हुए जॉन डा० मिलेट (John D- Millett) ने कहा है कि, ''आवश्यकता इस बात की है कि आदेश की एकता की धारणा में इस बात के साथ तालमेल बिठाया जाए कि किसी भी कार्य का द्विमुखी निरीक्षण किया जा सकता है अर्थात् तकनीकी तथा प्रशासकीय दोनों ही प्रकार का निरीक्षण भिन्न–भिन्न व्यक्तियों द्वारा किया जा सकता है। पहली प्रकार के निरीक्षण का सम्बन्ध कार्य को सम्पन्न करने की व्यवसायिक योग्यता से हो सकता है जब कि दूसरे निरीक्षण का मुख्य सम्बन्ध कार्य के लिए उपलब्ध साधनों–मानव तथा सामग्री का कुशलता उपयोग करने से होता है।'' इस प्रकार दोहरे आदेश कभी–कभी आवश्यक हो सकते हैं, किन्तु किसी भी परिस्थति में किसी कर्मचारी को परस्पर विरोधी आदेश न दिये जायें।

आदेश की एकता के उपरोक्त अर्थ के अतिरिक्त मिलेट ने इसके दो और अर्थ भी बताये हैं। पहले से उसका तात्पर्य यह है कि ऐसी व्यवस्था के अन्तर्गत सभी प्रशासकीय प्राधिकार किसी एक उत्तरदायी अध्यक्ष–राष्ट्रपति अथवा राज्यपाल में निहित हों और वहीं से निकलें। दूसरे, किसी बोर्ड अथवा आयोग के नियन्त्रण की अपेक्षा किसी एक व्यक्ति का नियन्त्रण अधिक अच्छा होता है, परन्तु आदेश की एकता का सबसे अधिक व्यापक अर्थ यह है कि किसी भी कर्मचारी को एक से अधिक उच्चतर अधिकारी से आदेश प्राप्त न हो।

व्यवहार में आदेश की एकताः

आदेश की एकता के सिद्धान्त की व्यावहारिकता कैसी है? इसके उत्तर में कहा जा सकता है कि उस समय कठिनाई उत्पन्न हो जाती है जब संगठन में काम करने वाले तकनीकी कर्मचारियों पर इसे लागू किया जाता है। तकनीकी ज्ञान प्राप्त व्यक्ति या विशेषज्ञ के आदेश भी विशेषज्ञ से ही प्राप्त होने चाहिए, परन्तु इस सिद्धान्त के अन्तर्गत तकनीकी एवं सामान्य प्रशासन में कोई अन्तर नहीं किया जाता। इस मामले में जब तक संघर्ष या टकराव नहीं होता तब तक तो कोई समस्या नहीं होती है। परन्तु आदेश में अस्पष्टता या टकराव की स्थिति में कर्मचारियों को चाहिए कि वे इसे उच्च अधिकारियों के ध्यान में लाएं एवं समस्याओं का समाधान करें।

एफ. डब्ल्यू. टेलर ने इसके लिए द्विमुखी पर्यवेक्षण का सुझाव दिया है। हर्बर्ट साइमन ने इसमें संशोधन करते हुए कहा है कि, "दो प्राधिकारी आदेश के परस्पर टकराव की स्थिति में केवल एक ही निर्धारित व्यक्ति होना चाहिए जिसकी अधीनस्थ कर्मचारी आज्ञा माने।''

लूथर गुलिर ने आदेश की एकता के सिद्धान्त के अनुसरण पर अपने विचार रखते हुए यह स्वीकार किया है कि इस सिद्धान्त का कठोरता से पालन करने में अवांछनीय स्थिति उत्पन्न हो सकती है, दूसरी ओर न पालन संगठन में अकार्यकुशलता एव अनुत्तरदायित्व की भावना के अवगुण आ सकते हैं।

टेलर के विचारों के अनुरूप जॉन डी. बिलेट ने बताया है कि आवश्यकता इस बात की है कि आज एकता के विचार में इस बात के लिए समन्वय बैठाया जाना चाहिए कि किसी भी कार्य के लिए द्विमुखी निरीक्षण किये जा सके अर्थात् तकनीकी एवं प्रशासकीय दोनों प्रकार के निरीक्षण भिन्न–भिन्न व्यक्तियों द्वारा किये जा सकते हैं। परन्तु

इस बात का ध्यान रखना होगा कि किसी भी परिस्थिति में कोई कर्मचारी परस्पर विरोधी आदेश के अधीन न रहे क्योंकि उससे कार्य संचालन में भारी भ्रम उत्पन्न हो जायेगा।

नियन्त्रण का क्षेत्र
(Span of Control)

औपचारिक संगठन की पदसोपानीय व्यवस्था में संगठन अनेक लम्बवती–स्तरों में विभाजित रहता है। संगठन के सर्वोच्च अधिकारी को अपने अधीनस्थों के कार्यों का पर्यवेक्षण करना होता है। प्रत्येक अधीनस्थ कर्मचारी अपने से सर्वोच्च अधिकारी की आज्ञाओं का पालना करता है। यहां प्रश्न यह उत्पन्न होता है कि एक अधिकारी सफलतापूर्वक कितने अधीनस्थों के कार्यो का पर्यवेक्षण, निरीक्षण एवं नियन्त्रण कर सकता है? इसी प्रश्न से उत्पन्न हुआ संगठन का सिद्धान्त "नियन्त्रण का क्षेत्र'' है। इसका सम्बन्ध संगठन में पदसोपान के विभिन्न चरणों के अधिकारियों के अधीनस्थों की संख्या से है। इस सिद्धान्त को प्रशासकीय संगठन के लिए आदर्श मार्ग–दर्शक सिद्धान्त माना जाता है, यद्यपि विज्ञान एवं तकनीकी विकास एवं प्रबन्ध में मशीनीकरण के कारण नियन्त्रण के क्षेत्र की मान्यताओं में परिवर्तन आया है। संगठन के मानवीय तत्त्वों के संदर्भ में इस सिद्धान्त की उपादेयता बनी हुई है।

अर्थः

साहित्यिक रूप में "नियन्त्रण" शब्द का अर्थ हाथ के अंगूठे एवं तर्जनी के ऊपरी भाग को जब मिलाया जाता है तो उसके बीच की दूरी को कहा जाता है, नियन्त्रण शब्द का तात्पर्य शक्ति या सत्ता से है जो निर्देश देती है। लोक प्रशासन में नियन्त्रण के क्षेत्र का संदर्भ उस अधीनस्थों की संख्या से होता है जिसे एक अधिकारी प्रभावशाली तरीके से नियन्त्रित करता है। इसे विभिन्न नामों से भी पुकारा जाता है जैसे "ध्यान क्षेत्र", "पर्यवेक्षण क्षेत्र'' तथा ''उत्तरदायित्व क्षेत्र'' इत्यादि । अवस्थी एवं माहेश्वरी ने इसकी परिभाषा देते हुए लिखा है, "नियन्त्रण का क्षेत्र साधारण रूप में अधीनस्थों एंव कार्यो की इकाइयों की उस संख्या को कहा जाता है जिन्हें एक प्रशासक व्यक्तिगत रूप में निर्देशित करता है।'' डिमाक एवं डिमाक के अनुसार, "नियन्त्रण का क्षेत्र किसी उद्यम की मुख्य कार्यपालिका तथा उसके प्रमुख साथी कार्यालय के बीच सीधे तथा सामान्य संचार की संख्या एवं क्षेत्र है।'' निकोलस हेनरी के शब्दों में, "नियन्त्रण का क्षेत्र का अर्थ एक मैनेजर द्वारा सीमित संख्या में अधीनस्थों के सही तरीके से नियन्त्रण से है।

इस सिद्धान्त का औचित्य इस तथ्य में निहित है कि मानवीय ज्ञान की कुछ सीमाएं होती हैं। यदि इन सीमाओं के आगे उन्हें कार्य करने के लिए बाध्य किया जाता है तो संगठन पर इसका प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। यह ''ध्यान के क्षेत्र'' पर निर्भर करता है। मनोवैज्ञानिकों ने "ध्यान" के क्षेत्र में अनेक प्रयोग किए हैं तथा यह निष्कर्ष प्रस्तुत किया है कि सामान्यतया एक आदमी कुछ निश्चित संख्या तक ही एक समय में ध्यान रख सकता है। संगठन में यह सिद्धान्त मनोविज्ञान पर आधारित है। यह एक सार्वभौमिक तथ्य है कि कोई भी पर्यवेक्षक चाहे वह कितना ही योग्य क्यों न हो असीमित व्यक्तियों के कार्यों का पर्यवेक्षण नहीं कर सकता।

नियन्त्रण के क्षेत्र का गणित :

नियन्त्रण के क्षेत्र की संख्या के बारे में विद्वानों में मतभेद है। सेकलर हडसन एवं ग्राहम वालास ने यह संख्या 10 से 12 बतलाई है। आई. हेमिल्टन ने इसे 4 बताया है। उरविके ने संगठन के ऊपरी स्तर पर यह संख्या 5–6 तथा निम्नस्तर पर 10–12 बताई है जबकि हेनरी फयोल ने 5–6 बताई है।

बी. ए. ग्रेकुनाज ने नियन्त्रण के क्षेत्र की संख्या के बारे में गणितीय सूत्र प्रदान किया है। प्रत्येक निष्पादक को स्वयं एवं अपने अधीनस्थों के बीच के सम्बन्धों का उत्तरदायित्व भी वहन करना होता है। एक निष्पादक एवं उसके अधीनस्थों के सम्बन्ध को एकल सम्बन्ध के आधार पर नहीं देखा जा सकता क्योंकि सम्बन्ध गणितीय मात्रा में

बढ़ते जाते हैं। अपने अध्ययन के आधार पर ग्रेकुनाज ने एक गणितीय सूत्र का विकास किया है जो नियन्त्रण के क्षेत्र की जटिलता के परीक्षण एवं सम्बन्धों की संख्या बताने में सहायक है।

$N=n(n^2e2+n-1)$

(N= सम्बन्धों की कल संख्या)

(n = अधीनस्थों की संख्या)

यदि एक अधिकारी के अधीन 4 अधीनस्थ हैं तो उसे कुल निम्नलिखित संख्या में सम्बन्ध देखने होंगे :

N=4 (4x4e2+4-1)

=N=4(8+4-1)

=N=4(11)

=N=44

अर्थात् उसे 44 सम्बन्धों को देखना होगा।

ग्रेकुनाज ने अपने इस सूत्र के द्वारा यह प्रमाणित कर दिया कि निष्पादक को अपने अधीनस्थों के व्यापक सम्बन्धो को देखना पडता है। अत नियन्त्रण का क्षेत्र बिल्कुल सीमित होना चाहिए। उदाहरण के रूप में यदि एक अधिकारी के चार अधीनस्थ है तो उसे 44 सम्बन्धों को देखना पड़ता है।

नियन्त्रण के क्षेत्र का गणित निम्नलिखित तत्त्वों से प्रभावित होता है

(1) कार्य, (2) समय, (3) स्थान, (4) पर्यवेक्षण एवं अधीनस्थों का व्यक्तित्व, (5) प्रत्यायोजन, (6) पर्यवेक्षण की तकनीकी।

कार्य की प्रकृति अगर नियमित, दोहराववाली, नापने योग्य है तो नियन्त्रण का क्षेत्र व्यापक हो सकता है। इसी प्रकार संगठन एक ही स्थान पर केन्द्रित है एवं बिखरा हुआ नहीं है, पुराना एवं व्यवस्थित है तो भी नियन्त्रण का क्षेत्र व्यापक हो सकता है। संगठन में पर्यवेक्षक कुशल है तथा अधीनस्थ प्रशिक्षण प्राप्त निष्ठावान कार्यकर्ता है, पर्यवेक्षण के लिए आधुनिक तकनीकें उपलब्ध हैं। पर्याप्त मात्रा में प्रत्यायोजन है तो भी संगठन में नियन्त्रण का क्षेत्र व्यापक हो सकता है।

हर्बर्ट साइमन ने इस सम्बन्ध में दो प्रकार के संगठन बताये हैं :–

सीमित नियन्त्रण का क्षेत्र

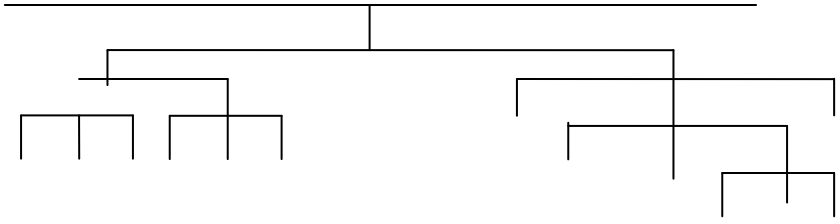

क्षितिजीय नियन्त्रण का क्षेत्र

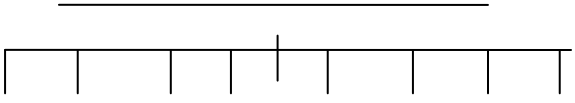

प्रथम में नियन्त्रण का क्षेत्र सीमित है क्योंकि संगठनीय पदसोपान के कई स्तर हैं। अतः एक निष्पादक सीमित संख्या में ही अधीनस्थों को देख सकता है। द्वितीय में पदसोपान के कम चरण होने के कारण नियन्त्रण का क्षेत्र व्यापक हो सकता है। नियन्त्रण के क्षेत्र में एक सीमा तक संख्या बढ़ जाने से आदेश का संचार गलत दिशा में चला जाता है तथा नियन्त्रण अप्रभावशाली एवं कमजोर हो जाता है।

अत, नियन्त्रण के क्षेत्र की संख्या के बारे में निम्न निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं

1. संगठन के ऊपरी सतह पर नियन्त्रण का क्षेत्र सीमित एवं निम्न स्तर पर व्यापक होता है।
2. पदसोपान के अनेक स्तर होने पर नियन्त्रण का क्षेत्र सीमित एवं कम स्तर होने पर व्यापक होता है।
3. नियन्त्रण का क्षेत्र संगठन के कार्य, आयु, स्थिति, कार्मिकों का व्यक्तित्व इत्यादि तत्त्वों पर निर्भर करता है।
4. नियन्त्रण के क्षेत्र में केवल सर्वोच्च द्वारा अधीनस्थों के नियन्त्रण का ही ध्यान नहीं अपितु संगठन के बीच के संबंधों का भी ध्यान रखना पड़ता है।

नियन्त्रण के क्षेत्र के बारे में पुनर्विचार

वर्तमान समय में नियन्त्रण के क्षेत्र के सिद्धान्त के बारे में पनर्विचार किया जा रहा है। प्रशासन में स्वचलन, सूचना के क्षेत्र म क्रान्ति तथा विशेषज्ञों की बढ़ती भूमिका इस परिवर्तन के लिए उत्तरदायी है। स्वचलन एवं मशीनी प्रक्रिया ने संचार की तीव्र गति एवं सरल प्रक्रियाए प्रदान की हैं। आँकड़ों की गणना, लेखांकन खरीद इत्यादि के क्षेत्र में मशीनीकरण का प्रयोग किया जा रहा है। स्वचलन से स्टोर. रिकार्ड, बिल बनाने, वेतन बिल इत्यादि का कार्य सरल हो गया है। हम कम्प्यूटर एव इलेक्ट्रोनिक के युग में रह रहे है जहाँ प्रशासन को सही एवं शीघ्र ही आंकडे एवं सूचनाएं उपलब्ध हो जाती है। अतः नियन्त्रण का क्षेत्र काफी व्यापक हो गया है।

केन्द्रीयकरण तथा विकेन्द्रीकरण

केन्द्रीयकरण एवं विकेन्द्रीयकरण संगठन के महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त है। यह संगठन के निर्णय की शक्ति के वितरण से सम्बन्धित है। केन्द्रीयकरण के अन्तर्गत सत्ता संगठन के शिखर पर केन्द्रित रहती है। सत्ता के निम्न स्तर निर्देशनों, परामर्श एव आदेशों के लिए सर्वोच्च सत्ता पर निर्भर रहते हैं। दूसरी ओर विकेन्द्रीयकरण के अन्तर्गत प्रशासकीय सत्ता का विभिन्न स्तरों की इकाइयो में विभाजन रहता है। सत्ता के निम्न स्तर बहुत से मामलों पर स्वयं निर्णय लेते रहते हैं। दोनों प्रकार के सिद्धान्तों के अपने गुण–दोष हैं।

अर्थः

औपचारिक रूप में सत्ता का संगठन के शिखर पर केन्द्रित होना केन्द्रीयकरण कहलाता है। ऐलेन के शब्दों में, "संगठन में केन्द्रीय बिन्दुओं पर सत्ता का व्यवस्थित एवं निरन्तर आरक्षण केन्द्रीयकरण है।'' हेनरी फेयोल के अनुसार, "प्रत्येक कार्य जहाँ अधीनस्थों की भूमिका महत्त्वपूर्ण रहती है वहां विकेन्द्रीयकरण होता है, जहाँ कम रहती है वह केन्द्रीयकरण होता है।'' विलोबी के शब्दों में– "अत्याधिक केन्द्रीयकृत व्यवस्था में स्थानीय इकाईयाँ केवल कार्यवाहक अभिकरणों के रूप में कार्य करती हैं। प्रत्येक कार्य केन्द्रीय कार्यालय की ओर से किया जाता है।''

विकेन्द्रीयकरण की कुछ परिभाषाएँ निम्न हैं

ऐलेन––''विकेन्द्रीयकरण कार्यस्थल पर सत्ता का व्यवस्थित एवं निरन्तर प्रत्यायोजन है।''

एल. डी. व्हाइट–"विकेन्द्रीयकरण की प्रक्रिया में उच्च स्तर से निम्न स्तर को सत्ता का स्थानान्तरण है।''

होल एवं जॉनसन–"संगठन की वह स्थिति विकेन्द्रीयकरण है जहाँ पर्याप्त मात्रा में सत्ता एवं उत्तरदायित्व का प्रत्यायोजन रहता है।''

केन्द्रीयकरण के लाभ
(Merits of Centralization)

केन्द्रीयकरण के निम्नलिखित लाभ हैं:

1. प्रशासन की केन्द्रीकृत व्यवस्था में मुख्य कार्यपालिका का अधिक नियन्त्रण होता है। उसके द्वारा प्रशासन के सभी अंगों पर सक्रिय तथा प्रभावशाली नियन्त्रण रखा जाता है।
2. इस व्यवस्था के अन्तर्गत प्रशासन में एकरूपता को पक्का करती है। इस प्रकार केन्द्रीकृत व्यवस्था में कार्य का साम्पादन देश भर में एक ही ढंग से तथा एक सी ही सामान्य नीतियों तथा सिद्धान्तों के अनुसार किया जाता है।
3. प्रशासन की केन्द्रीकृत व्यवस्था में नियमों की एकरूपता के कारण सामान की खरीद तथा वितरण और कर्मचारी वर्ग से संबंधित मामलों में दुरुपयोग तथा अनियमितताएं (Irregularities) नहीं होने पाती।

केन्द्रीयकरण की हानियां
(Demerits of Centralization)

केन्द्रीयकरण की हानियां निम्नलिखित हैं:

1. केन्द्रीयकरण प्रशासन में निर्णय लेने में दूर हो जाती है। इसमें तुरन्त निर्णय लेना तथा उन्हें तुरन्त लागू करना संभव नहीं हो पाता। इससे प्रशासन में लाल–फीतशाही तथा अन्य कई कठिनाइया और परेशानियां उत्पन्न हो जाती है।
2. केन्द्रीकृत प्रशासकीय व्यवस्था को स्थानीय परिस्थितियों के विषय में कम जानकारी होती है। वह एकरूपता पर काफी जोर देती है जो कि हानिकारक है। इससे अकुशलता के प्रोत्साहन होता है।
3. केन्द्रीयकरण से प्रशासन में लचीलेपन (Elegibility) की कमी तथा कठोरता उत्पन्न हो जाती है। तीव्र गति से परिवर्तनशील आधुनिक युग में कठोर सिद्धान्तों तथा प्रक्रियाओं के अनुसार चलाई जा रही सरकार प्रगति तथा सुधार के मार्ग में एक बहुत बड़ी बाधा होती है।
4. केन्द्रीयकरण के परिणामस्वरूप प्रशासन में लोक–अभिक्रम (Popular Initiative) तथा जनता द्वारा प्रत्यक्ष रूप से प्रशासन में भाग लेने के अवसर बहुत कम हो जाते हैं। इससे लोकतन्त्र कमजोर बहुत कम हो जाते है। इससे लोकतन्त्र कमजोर हो जाता है। जनता का सहयोग किसी भी योजना की सफलता के लिए अनिवार्य होता है परन्तु केन्दीकृत व्यवस्था लोगों को प्रशासन के साथ सहयोग करने के लिए प्रोत्साहन प्रदान नहीं करती।
5. केन्द्रीकृत व्यवस्था में मुख्य कार्यालय अनेक बार स्थानीय दशाओं की जानकारी के बिना ही कार्य करता है। उसे स्थानीय लोगों की आवश्यकताओं तथा समस्याओं का सही ज्ञान नहीं होता। इसलिए वह स्थानीय समस्याओं के सम्बन्ध में गलत निश्चय तथा गलत अनुमानों पर आधारित निर्णय ले लेता है, जिन से बहुत हानि होती है।
6. यह अधिनायकवाद (Dictatorship) को प्रोत्साहन प्रदान करती है।
7. यह कर्मचारियों की सोचने की शक्ति तथा पहलकदमी करने की भावना को समाप्त कर देती है।
8. केन्द्रीयकृत व्यवस्था में निरीक्षण एवं नियन्त्रण तथा लेखा–पड़ताल आदि के लिए अधिक कर्मचारी रखने पड़ते हैं। इससे प्रशासकीय खर्च बढ़ जाता है। इसलिए मितव्ययिता तथा कार्यकुशलता की दृष्टि से भी केन्द्रीकृत व्यवस्था ठीक नहीं है।

विकेन्द्रीयकरण की लाभ
(Merits of Decentralization)

विकेन्द्रीयकरण के निम्नलिखित लाभ हैं:

1. आम जनता द्वारा प्रशासन में भाग लेना तथा प्रशासन पर लोकप्रिय नियन्त्रण (Popular Control) प्रशासन की विकेन्द्रीकृत व्यवस्था में ही सम्भव है। ऐसी व्यवस्था लोकतन्त्र को वास्तविक, व्यापक तथा शक्तिशाली आधार प्रदान करती है।
2. विकेन्द्रीयक त व्यवस्था में अधिकार, कार्य तथा उत्तरदायित्व का विभाजन हो जाने के कारण उच्चाधिकारियों को राहत मिलती है। ये दिन–प्रतिदिन के छोटे–मोटे कार्यों से मुक्त हो जाते हैं। इस प्रकार वह अपने समय तथा शक्ति का प्रयोग नीति तथा नियोजन की बड़ी–बड़ी समस्याओं के समाधान के लिए कर सकते हैं।
3. विकेन्द्रीयकरण नियमों तथा विनियमों को लागू करने में प्रोत्साहन देती है।
4. विकेन्द्रीयकरण से कार्य को तेजी से करने तथा लाल–फीताशाही को घटाने में सहायता करती है। इसमें मुख्य कार्यालय को बार–बार हवाले देने की आवश्यकता नहीं होती, इसलिए कार्य में देरी नहीं होती। इससे प्रशासकीय सुयोग्यता भी बढ़ जाती है।
5. इस व्यवस्था में प्रशासन स्वयं को विशिष्ट स्थानीय दशाओं के अनुकूल बना सकता है। प्रशासन के नियमों, कानूनों तथा नीतियों का शिकार होने वाले लोगों को अपनी आवश्यकताओं तथा समस्याओं को स्थानीय प्रशासन के सामने प्रस्तृत करने का अवसर मिलता है। इससे प्रशासन जनता के निकट आ जाता है तथा किसी विशिष्ट समस्याओं को अच्छी प्रकार समझा जा सकता है तथा उनका कुशलतापूर्वक तथा शीघ्र समाधान किया जा सकता है।
6. इस व्यवस्था के अन्तर्गत स्थानीय उलझनों को निम्न स्तरों पर ही सुलझा लिया जाता है। ऐसा करने से भिन्न–भिन्न इकाइयों में नए प्रयोग तथा मुकाबले की भावना उत्पन्न होती है।
7. विकेन्द्रीयकरण क्षेत्रीय अधिकारियों को अपनी योग्यता तथा कार्यक्षमता दिखाने का अवसर प्रदान करती है। इससे कर्मचारियों को स्वयं निर्णय करने तथा उत्तरदायित्व निभाने का प्रशिक्षण मिलता है। उनमें स्वे–मान की भावना विकसित होती है। उनमें मनोबल (Morale) ऊँचा होता है और वह अनुभव करने लग जाते हैं कि उच्चाधिकारियों को उनकी क्षमता तथा योग्यता में भारी विश्वास है। यह भावना क्षेत्रीय अधिकारियों को और अधिक उत्तरदायी तथा कर्तव्यपरायण बनाती है और वह अपने कार्य अधिक उत्साह, विवेक तथा सच्ची लगन से करते हैं।
8. विकेन्द्रीकृत व्यवस्था किसी भी संकट के दबावों तथा खिचावों को अधिक अच्छी प्रकार सहन कर सकती है। इस व्यवस्था के अन्तर्गत अधिकारियों को यह सत्ता प्राप्त होती है कि वे परिस्थितियों की मांग के अनुसार शीघ्र निर्णय कर सके। इसलिए वे किसी भी आकस्मिक अथवा संकटकालीन स्थिति का अधिक अच्छी तरह से सामना कर सकता है।

विकेन्द्रीयकरण क्षेत्रीय संस्थाओं एवं अभिकरणों को मजबूत बनाती है।

विकेन्द्रीयकरण की हानियां
(Demerits of Decentralization)

विकेन्द्रीयकरण की हानियां निम्नलिखित हैं

1. प्रशासन की विकेन्द्रीकृत व्यवस्था के अन्तर्गत एक समान राष्ट्रीय नीति (A Uniform National Policy) को बनाए रखना कठिन हो जाता है। क्योंकि यह हो सकता है कि विभिन्न क्षेत्रीय इकाइयां भिन्न–भिन्न प्रकार की क्रियाविधियां (Courses of Action) अपना लें।

2. विकेन्द्रीकृत व्यवस्था से विभिन्न क्षेत्र स्थलों थ्पमसक जंजपवदेद्ध के बीच समुचित समन्वय (Proper Co-ordination) का अभाव हो सकता है। क्योंकि इसमें यह हो सकता है कि एक क्षेत्रीय कार्यालय राष्ट्रीय नीति से पृथक अपनी निजी नीति को लागू कर दे।

3. विकेन्द्रीकृत व्यवस्था के कारण स्थानीय अधिकारियों में राष्ट्रीय हित (National Interest) के दृष्टिकोण की अवहेलना हो सकती है। क्योंकि स्थानीय अधिकारी स्थानीय समस्याओं में बहुत अधिक उलझे हुए होते हैं, इसलिए वह अदूरदर्शी (Short-sighted) तथा संकुचित विचारों वाले (Narrow-minded) बन सकते हैं। उनका मानसिक क्षेत्र इतना सीमित हो जाता है कि वह राष्ट्रीय समस्याओं के संदर्भ में विचार करना ही छोड़ देते हैं।

4. विकेन्द्रीकृत व्यवस्था में स्थानीय राजनीति (Local Politics) स्थानीय कार्यालय पर हावी हो सकती है। स्थानीय, राजनीतिक एवं नेता प्रशासन के दिन–प्रतिदिन के कार्यों में हस्तक्षेप करने लग जाते हैं। इसके फलस्वरूप क्षेत्रीय सेवाओं में भ्रष्टाचार तथा अकुशलता आ जाती है।

निष्कर्ष
(Conclusion)

केन्द्रीयकरण तथा विकेन्द्रीयकरण दोनों प्रकार की व्यवस्थाओं के लाभों तथा हानियों का विश्लेषण करने के पश्चात् हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि दोनों में से किसी को भी अच्छे संगठन का पूर्ण सिद्धान्त नहीं माना जा सकता। ऐसी दशा में लेखकों ने या तो यह सुझाव दिया है कि दोनों सिद्धान्त के बीच समझौता कर लिया जाये अथवा उनका विचार है कि प्रत्येक परिस्थिति की मांग के अनुसार यह तय किया जाये कि किस संगठन को केन्द्रीयकरण के तथा किस संगठन को विकेन्द्रीयकरण के आधार पर खड़ा किया जायेगा। वास्तव में इन दोनों की प्रवृत्तियों को साध्य नहीं समझ लेना चाहिए।

केन्द्रीयकरण एवं विकेन्द्रीयकरण को प्रभावित करने वाले तत्त्व

यद्यपि केन्द्रीयकरण एवं विकेन्द्रीयकरण दो विरोधी दृष्टिकोण हैं परन्तु हम यह कल्पना नहीं कर सकते कि कोई भी संगठन न तो पूर्ण रूप से विकेन्द्रीकृत हो सकता है और न ही केन्द्रीयकृत । दोनों एक दूसरे के पूरक सहयोगी कहे जा सकते हैं जो सगठन के स्थायित्व उत्तरदायित्व कार्यकुशलता एवं प्रभावशीलता के लिए आवश्यक है। निश्चय ही संगठन के कुछ कार्य ऐसे है जो केन्द्रीयकरण का संकेत देते हैं जैसे – प्रबन्धकीय निर्माण एवं पहल, परन्तु जैसा कि अरनेस्ट डाल मानते हैं कि, "इन परिस्थतियों में विकेन्द्रीयकरण की मात्रा अधिक रहती है। जहाँ निर्णय अधिक मात्रा में संगठन के पदसोपान के निम्न स्तरों पर किये जाते हैं।''

जे. डब्ल्यू फेसलर ने निम्न चार तत्वों को बताया है जो केन्द्रीयकरण एवं विकेन्द्रीयकरण को प्रभावित करते है

(1) उत्तरदायित्व

(2) प्रशासकीय

(3) कार्यात्मक

(4) संगठन के बाहरी तत्वों का प्रभाव जैसे–जनता

1. **उत्तरदायित्व का तत्व (Factor of Responsibility)** :– विकेन्द्रीयकरण पर रोक लगाता है तथा यह केन्द्रीयकरण के पक्ष में है। विभाग का अध्यक्ष विभाग के प्रत्येक कार्य के लिए अन्तिम रूप में उतरदायी होता है। यदि किसी विभाग के कार्यकरण (Functioning) में कोई गलती हो जाती है है। तो उसके लिए

विभाग के अध्यक्ष को ही उतरदायी ठहराया जाता है। इसलिए यह स्वाभाविक है कि वह अपनी शक्ति को विकेन्द्रित नहीं करना चाहता। वह यही सोचता है कि अधिक महत्वपूर्ण मामलों पर निर्णय करने की शक्ति उसके अपने हाथों में रहे।

2. **प्रषासकीय तत्व (Administrative Factor)** :– केन्द्रीयकरण तथा विकेन्द्रीयकरण को प्रभावित करने वाले कई प्रशासकीय तत्व है। इनमें से कुछ इस प्रकार हैं – अभिकरण की आय (Age of the agency), उसकी नीतियां तथा कार्यविधियों की स्थिरता, उसके क्षेत्रीय कर्मचारियों की योग्यता एवं क्षमता, कार्य की गति तथा उसमें मितव्ययिता (Economy) के लिए दबाव आदि। यहां तक अभिकरण की आय का सम्बन्ध है, पुराने अभिकरणों मे विकेन्द्रीयकरण सरल होता है क्योंकि उनके अन्दर प्रक्रियाएँ तथा परम्पराएं भली प्रकार स्थापित हो चुकी होती हैं, जबकि नए अभिकरणों में छोटी–छोटी बातों पर उच्चतर अधिकारियों का निर्णय प्राप्त करना आवश्यक होता है। यदि किसी संगठन की नीतियों में स्थिरता पाई जाती है तो वहां विकेन्द्रीयकरण किया जाता है, जिस संगठन की नीतियों में बहुधा परिवर्तन किया जाता हो वहाँ केन्द्रीयकरण ही किया जाता है। अन्यथा केन्द्रीयकरण ही ठीक रहता है। गति और मितव्यायिता की दृष्टि से केन्द्रीयकरण ही अनुकूल पड़ता है।

3. **कार्यात्मक तत्त्व (Functional Factor):** किसी अभिकरण द्वारा सम्पन्न किए जाने वाले कार्य भी केन्द्रीयकरण अथवा विकेन्द्रीयकरण के निर्धारण में सहायता करते हैं। एक ही कार्य करने वाले अभिकरण में केन्द्रीयकरण किया जाता है। बहुत प्रकार के कार्यो (Multi-functions) को सम्पन्न करने वाले अभिकरण में विकेन्द्रीकरण किया जाता है। यदि अभिकरण द्वारा समपन्न किए जाने वाले कार्यों में राष्ट्रीय एकरूपता यन्दपवितउपजलद्ध लाने की आवश्यकता है तो इससे केन्द्रीयकरण को प्रोत्साहन मिलेगा और यदि अभिकरण द्वारा किये जाने वाले कार्यों में भिन्न–भिन्न प्रदेशों के अन्दर बहुरूपता (Diversity) लानी आवश्यक हो, तो इससे विकेन्द्रीयकरण को प्रेरणा मिलेगी।

4. **बाह्य तत्त्व (External factor)** : कुछ बाह्य तत्त्व भी केन्द्रीयकरण तथा विकेन्द्रीयकरण को प्रभावित करते हैं। यदि किसी अभिकरण को संगठन से बाहर के व्यक्तियों का सहयोग प्राप्त करने की आवश्यकता हो तो वहां विकेन्द्रीयकरण ही किया जाता है। यदि किसी अभिकरण को विकास योजना जैसे किसी कार्यक्रम को लागू करने के लिए लोक समर्थन अथवा स्थानीय जनता के समर्थन की आवश्यकता हो तो उसकी प्राप्ति के लिए विकेन्द्रीयकरण अनिवार्य हो जाता है। देश के विशिष्ट भागों में प्रभावशाली राजनीतिक दलों के दबाव के कारण भी विकेन्द्रीयकरण का सहारा लेना पड़ता है। यदि किसी अभिकरण को अन्य अभिकरणों के साथ मिलकर कार्य करना पड़ता है तो भी विकेन्द्रीयकरण को प्रोत्साहन मिलता है।

प्रशासकीय संगठन में केन्द्रीयकरण एवं विकेन्द्रीयकरण दोनों ही प्रकार की प्रवृत्तियां विद्यमान रहती हैं। इन्हें सावधानी से अपनाये जाने की आवश्यकता रहती है। अन्त में एम. पी. शर्मा के शब्दों में, ''न तो केन्द्रीयकरण और न ही विकेन्द्रीयकरण को अच्छे संगठन का एकमात्र निरपेक्ष सिद्धान्त माना जा सकता है।''

एकीकृत बनाम स्वतन्त्र व्यवस्था

संगठन के सिद्धान्तों में एक सिद्धान्त संगठन के स्वरूप से सम्बन्धित एकीकृत बनाम स्वतंत्र संगठन का है, एकीकृत संगठन को विभागीय संगठन भी कहा जाता है। इसमें समान सेवाएं सम्पन्न करने वाले अभिकरण विभाग में सम्बद्ध कर दिये जाते हैं।

ये सभी मुख्य निष्पादक की सता के अन्तर्गत रखे जाते हैं। एम. पी. शर्मा के अनुसार "एकीकृत प्रशासनिक व्यवस्था के अन्तर्गत प्रशासन की विविध इकाइयाँ मुख्य कार्यपालिका के अधीन समान सूत्र पर जुड़ी हुई होती है।" विलोबी के शब्दों में, "एकीकृत व्यवस्था में यह प्रयास किया जाता है कि जिन सेवाओं की कार्यवाही एक सी समान

परिधि में आती है उनके बीच परस्पर घनिष्ठ रूप से कार्यकारी सम्बन्ध कायम रखे जाते हैं। इन सभी सेवाओं का विभाग में वर्गीकरण कर लिया जाता है जिनका अध्यक्ष ऐसा व्यक्ति होता है जो उन सब पर सामान्य नजर रखे और यह देखे कि सामान्य उद्देश्य की प्राप्ति में एक स्वर से कार्य करे।''

इस प्रकार एकीकृत व्यवस्था में सत्ता सूत्र मुख्य निष्पादक से होता हुआ व्यवस्था के सभी अंगों तक पहुँचता है और संगठन में एक आंगिक एकता बन जाती है।

एकीकृत व्यवस्था के लाभः

एकीकृत व्यवस्था के कई लाभ हैं जैसे :–

1. इस व्यवस्था में उत्तरदायित्व क्षेत्राधिकार पूर्णतया स्पष्ट रहता है।
2. प्रशासन की समस्त इकाईयाँ एक सूत्र में बंधी रहती हैं जिससे आदेश की एकता बनी रहती है।
3. मुख्य निष्पादक के प्रति उत्तरदायी रहते हुए विभिन्न इकाइयों में सहयोग एवं समन्वय बना रहता है।
4. विभिन्न विभागों के आंकड़े एवं सूचनाओं का एक स्थान पर संग्रह सरलतापूर्वक हो सकता है जो भावी योजनाओं के निर्माण में सहायक होती है।

एकीकृत व्यवस्था के दोषः

परन्तु यह प्रणाली पूर्णतया दोषमुक्त नहीं है। इस प्रणाली में प्रत्येक कार्य "उचित मार्ग द्वारा'' होता है, अतः संगठन के कार्य संचालन में अनावश्यक देरी होती है। इस व्यवस्था में मुख्य निष्पादक बहुत अधिक शक्ति सम्पन्न बन जाता हैं। एकीकृत व्यवस्था कहीं भी पूर्णरूपेण स्थापित नहीं की जा सकती।

अतः संगठन का दूसरा स्वरूप जिसे ''स्वतन्त्र व्यवस्था" कहा जाता है का भी अपना महत्त्व है। यह व्यवस्था एकीकृत व्यवस्था से पूर्णतया भिन्न नहीं हैं, बल्कि उसके साथ मात्रात्मक अन्तर रखती है। कोई भी प्रशासकीय संगठन न तो पूर्णतया एकीकृत हो सकता है और न ही स्वतंत्र। स्वतंत्र व्यवस्था में प्रत्येक स्तर वाली संस्थाएं या इकाईयां सत्ता–सम्पन्न होती हैं। विलोबी के अनुसार, "स्वतन्त्र व्यवस्था में प्रत्येक एजेन्सी एक स्वतन्त्र ईकाई है। उसका अन्य इकाइयों से या तो सीधा सम्बन्ध होता ही नहीं है या बहुत कम होता है। इस प्रणाली के अन्तर्गत सत्ता का सूत्र क्रियाशील एजेन्सी से सीधा मुख्य कार्यपालिका या विधानमण्डल को जाता है जिसके द्वारा वह निर्मित किया गया था और जिसके द्वारा वह नियन्त्रित होता है। इस प्रणाली में विभिन्न विभाग एक दूसरे से सम्बन्धित नहीं रहते तथा उनका अलग–अलग उत्तरदायित्व होता है। स्वतन्त्र व्यवस्था के अन्तर्गत परस्पर तनाव या टकराहट, समन्वय का अभाव, नियंत्रणहीनता इत्यादि की कमियां रहती हैं।

एकीकृत व्यवस्था को स्वतन्त्र व्यवस्था की तुलना में श्रेष्ठ माना गया है। विलोबी के शब्दों में, ''इन दो प्रणालियों के सापेक्ष लाभों के बारे में लेशमात्र भी सन्देह नहीं हो सकता। प्रायः प्रत्येक दृष्टि से एकीकृत व्यवस्था बहुत अधिक उपयोगी है।" एकीकृत व्यवस्था एकीकृत स्वरूप, प्रभावशाली नियन्त्रण, उत्तरदायित्व एवं प्रशासकीय सत्ता की स्पष्टता एवं भावी योजनाओं के निर्माण म सुगमता की दृष्टि से स्वतन्त्र व्यवस्था से अधिक उपयोगी कही जा सकती है।

महत्वपूर्ण प्रश्न

1. संगठन से क्या तात्पर्य है? इसके सिद्धान्तों का वर्णन कीजिए।
2. पदसोपान के सिद्धान्त का अर्थ क्या है? इसके गुण व दोषों का वर्णन कीजिए।
3. आदेश की एकता के सिद्धान्त का अर्थ एवं इसकी व्यवहारिकता पर प्रकाश डालिए।
4. कन्द्रीयकरण तथा विकेन्द्रीयकरण से आप क्या समझते है? इनके पक्ष एवं विपक्ष में तर्क दीजिए।

पर्यवेक्षण

(Supervision)

निर्णय लिए जाने के पश्चात् प्रमुख प्रशासकों का यह उत्तरदायित्व हो जाता है कि उन्हें ठीक प्रकार से कार्यान्वित किया जाय। यह उनका कर्तव्य है कि वे देखें कि संगठन ठीक प्रकार से कार्य करे तथा जिस उद्देश्य के लिए स्थापित किया गया है उसे प्राप्त करे। यह देखना कि संगठन अपने लक्ष्य की प्राप्ति के लिए कार्य करे पर्यवेक्षण कहलाता है। इसे प्रबन्ध का एक महत्त्वपूर्ण कार्य कहा जा सकता है। पर्यवेक्षण का उद्देश्य सेवाओं के स्तर को बनाये रखना भी होता है। बटन एवं बुकनर के शब्दों में, "पर्यवेक्षण एक विशेष तकनीकी सेवा है, जिसका उद्देश्य उन सब घटकों का परस्पर सहयोग एवं उन्हें उन्नत करने का प्रयास होता है जो संगठन के विकास को प्रभावित करते है। अतः पर्यवेक्षण द्वारा अधीनस्थ श्रमिकों या कर्मचारियों की कार्यक्षमता को बढ़ाने का प्रयास किया जाता है। नीति–निर्माण, योजना, बजट, कार्मिक व्यवस्था तब तक सफल परिणाम नहीं दे सकते, जब तक यह उत्तरदायित्व किसी को सौंपा न जाय जिससे वह देखें कि जो निर्धारित किया गया है उसी के अनुसार कार्य चल रहा है। संगठन में कार्य करने वाले भी दिशा निर्देशन एवं परामर्श के लिए किसी दूसरों को देखते रहते हैं। अतः प्रत्येक संगठन में चाहे वह व्यक्तिगत हो या सार्वजनिक, पर्यवेक्षण एक महत्त्वपूर्ण कार्य माना जाता है। संगठन के पद सोपानीय स्वरूप में प्रत्येक स्तर, अपने से अधीनस्थ स्तर के कार्यों का पर्यवेक्षण करता है।

पर्यवेक्षण का तात्पर्य

पर्यवेक्षण (Supervision) अंग्रेजी भाषा के दो शब्दों–''सुपर'' एवं "विजन'' से बना है जिसका अर्थ सर्वोच्च दृ ष्टि हैं इसका अर्थ ऊपर से देखना या दूसरों के कार्यों का अधीक्षण करना है। साधारण रूप में पर्यवेक्षण की परिभाषा दूसरों के कार्यों का अधिकारपूर्ण निर्देशन या अधीक्षण है। मागरिन्ट विलियमसन के शब्दों में, "यह ऐसी प्रक्रिया है जिसके द्वारा कर्मचारियों को अपनी आवश्यकताओं के अनुरूप अधिकारी द्वारा सहायता दी जाती है जिससे वह अपने ज्ञान एवं कौशल को बढाकर अपने कार्य को अधिक प्रभावशाली तरीके से सम्पन्न कर सके तथा अपने को एवं अन्य अभिकरणों को सन्तुष्ट कर सके। ''अतः संक्षेप में पर्यवेक्षण परिणामों को प्राप्त करना है । एकल्स एवं उसके साथी विद्वानों के अनुसार, "निश्चित नीतियों एवं सिद्धान्तों के आधार पर संगठन के उद्देश्यों को प्राप्त करने हेतु उचित नियन्त्रण, मार्गदर्शन तथा समुचित व्यवस्था ही पर्यवेक्षण है'' डालबेक के शब्दों में निश्चित उद्देश्य की प्राप्ति के लिए दूसरों के कार्यों का निर्देशन एवं उनमें समन्वय का कार्य करना पर्यवेक्षण है।" इस प्रकार पयवेक्षण एक जटिल कार्य है तथा इसमें भौतिक एवं मानवीय अनेक तत्व आ जाते हैं।

पर्यवेक्षकों के प्रकार : प्रर्यवेक्षक निम्नलिखित दो प्रकार के होते हैं

1. **क्षेणीगत पर्यवेक्षक (Line Supervisor)** – श्रेणीगत पर्यवेक्षक का अभिप्राय सत्ता सम्बन्धी नियन्त्रण से है। ("Line Supervisor refer to control eÛercised by the persons in line of Command") उदाहरणार्थ, पुलिस विभाग में उप–पुलिस अधीक्षक (D.S.P.) का कार्य पुलिस अधीक्षक (S.P) के द्वारा नियन्त्रित किया जाता है। संगठन में यह क्रम निरीक्षक के पद तक चलता रहता हैः जैसे D.I.G→S.P→Dy. S.P→Inspector→S.I. →A.S.I→Head Constable.
2. **कार्यात्मक पर्यवेक्षक (Functional Supervisor)** कार्यात्मक पर्यवेक्षक वे अधिकारी होते है जो तकनीकी मामलों का नियन्त्रण करते हैं। उदाहरण के लिए लेखा परीक्षक (Auditors), तथा लेखाकार (Accountant) कार्यात्मक पर्यवेक्षक हैं।

पर्यवेक्षण के तरीके या ढंग
Methods of Supervision

मिलेट (Millet) ने पर्यवेक्षण के निम्नलिखित छह तरीके बताए हैं

1. **परियोजनाओं की पूर्व स्वीकृति (Prior approval of Individual Projects)** – संगठन के किसी कार्य का पर्यवेक्षण करने से पहले पर्यवेक्षक की पूर्व स्वीकृति प्राप्त होनी चाहिए। पूर्व स्वीकृति लेने से योजनाओं में लचीलापन आ जाता है और त्रुटियो को ठीक करने की गुंजाइश भी रहती है। हालांकि अनावश्यक पूर्व स्वीकृति से प्रशासन में लाल फीताशाही की वृद्धि होती है। भारत में परियोजनाओं को क्रियान्वित करने से पूर्व विभागाध्यक्षों के अतिरिक्त वित्त मन्त्रालय की भी पूर्व स्वीकृति ली जाती है।
2. **सेवा स्तर पर मानदण्ड की घोषणा (Promulgation of Service Standards)** – सेवा स्तर का अर्थ है कि सेवा के बारे में कुछ मानदण्ड, मापक या उद्देश्य (जंदकंतके, ल्तकेजपबा वत ज्तहमजे) पूर्व निर्धारित कर लिए जाते हैं। पर्यवेक्षण के दौरान यह देखा जाता है कि क्या संगठन इन मानदण्डों के अनुसार कार्य कर रहा है या नहीं । उदाहरण के लिए, एक स्कूल या कॉलेज में विद्यार्थियों का पास प्रतिशत, अनुशासन, अध्यापकों का मनोबल, पढ़ाने में निपुणता तथा खेल–कूद व सांस्कृतिक गतिविधियों में योगदान आदि उसकी सेवाओं का मानदण्ड हो सकता है। यह अत्यन्त कठिन कार्य है।
3. **कार्यों की व्यापकता पर बजट सम्बन्धी सीमाएं (Budgetary Limitations)** – बजट पर्यवेक्षण का एक प्रभावशाली साधन है, क्योंकि इससे पर्यवेक्षक यह निश्चित कर सकता है कि क्या सम्बन्धित इकाई ने बजट की सीमाओं में रहकर ही खर्च किया है या इससे अधिक खर्च किया है। बजट में कई बार समय की सीमा भी लाद दी जाती है। क्षेत्रीय एजेन्सियों को उपबन्धों की सीमाओं के अन्दर रहकर ही कार्य करना पड़ता है। इस प्रकार उच्चाधिकारियों का अधीनस्थ अधिकारियों तथा क्षेत्रीय एजेन्सियों पर नियन्त्रण प्रभावशाली हो जाता है, क्योंकि इन एजेन्सियों को अपनी इच्छानुसार धन व्यय करने की स्वतन्त्रता प्राप्त नहीं होती है।
4. **आधारभूत अधीनस्थ कर्मचारी वर्ग का अनुमोदन (Approval of Key Subordinate Personnel)** – सरकार के भिन्न–भिन्न विभागों में भर्ती करने की स्वीकृति मुख्य कार्यपालिका (Chief Executive) द्वारा दी जाती है। संगठन के कुछ महत्वहीन पदों को छोड़कर अन्य सभी पदों की भर्ती की स्वीकृति प्राप्त करनी आवश्यक होती है। प्रायः सभी देशों में कर्मचारियों की भर्ती का कार्य लोक सेवा आयोगों द्वारा किया जाता है।
5. **कार्य की प्रगति सम्बन्धी प्रतिवेदन प्रणाली (Reporting System on Work Progress)** – पर्यवेक्षण करते समय विभिन्न इकाइयों द्वारा अपनी गतिविधियों एवं क्रियाकलापों द्वारा भेजी गई रिपोर्टों का अध्ययन किया जाता है। संगठन की भिन्न–भिन्न इकाइयाँ समय–समय पर मुख्य कार्यालय में रिपोर्ट भेजती रहती हैं। सप्ताह में भेजी जाने वाली रिपोर्ट को साप्ताहिक रिपोर्ट, एक मास में भेजी जाने वाली रिपोर्ट को मासिक रिपोर्ट, छह मास में भेजी गई रिपोर्ट को छमाही रिपोर्ट तथा एक वर्ष में भेजी जाने वाली रिपोर्ट को वार्षिक रिपोर्ट कहते हैं। पर्यवेक्षण करने वाला अधिकारी इन रिपोर्टो की जाँच–पड़ताल करके संगठन के परिणामों के विषय में ज्ञान प्राप्त कर सकता है। इस प्रकार प्रतिवेदन संगठन क कर्मचारियों तथा इसकी अधीनस्थ इकाइयों पर पर्यवेक्षण तथा नियन्त्रण रखने का बहुत ही महत्त्वपूर्ण एवं प्रभावशाली ढंग है।
6. **परिणामों का निरीक्षण (Inspection of Results)** – किसी भी संगठन की गतिविधियों की देख–रेख करने के लिए निरीक्षण एक प्रभावशाली यन्त्र है। प्रशासन की कार्य कुशलता में सुधार करना तथा विद्यमान नियमों–विनियमों का अनुपालन सुनिश्चित करना निरीक्षण के मुख्य उद्देश्य हैं। सिर्फ दोष निकालना ही निरीक्षण नहीं होता। कर्मचारियों के रास्तों में आने वाली कठिनाइयों को दूर करने के तरीके सुझाना भी निरीक्षण के अन्तर्गत आता है। निरीक्षण प्रायः निम्नलिखित तीन एजेन्सियों द्वारा किया जाता है–

1. उच्च अधिकारियों द्वारा (By Higher Officials)
2. मुख्य कार्यालय के निरीक्षण अधिकारियों द्वारा (By Inspectors of Head Office)
3. ब्राह्य निरीक्षण एजेन्सी द्वारा (By Externatl Agency)

पर्यवेक्षक के गुण
Attributes of Supervisor

एक अच्छे पर्यवेक्षक में निम्नलिखित गुण होने चाहिए–

1. जन–सम्पर्क व्यवहार में प्रशिक्षित।
2. कार्य की विषय–वस्तु का विशेष ज्ञान।
3. अच्छी शैक्षणिक योग्यताएं।
4. कार्य से प्रेम।
5. कर्मचारियों को काम समझाने की योग्यता।
6. साहस और सहनशीलता
7. चरित्रवान्।
8. प्रशासकीय योग्यताएं।
9. भावनात्मक नियन्त्रण
10. निष्पक्षता व ईमानदारी

महत्वपूर्ण प्रश्न

1. "समन्वय प्रशासकीय संगठन का प्रथम सिद्धान्त है" इस कथन की व्याख्या कीजिए।
2. समन्वय का महत्व क्या है? इसके प्रभावशाली साधनों का वर्णन कीजिए।
3. प्रर्यवेक्षण क्या है? इसके तरीके क्या है?

संचार
Commiunication

संचार प्रशासन का एक ऐसा महत्त्वपूण सिद्धान्त है जिसके बिना प्रशासनिक संगठन का संचालन किया जाना असंभव है। संगठन सरकारी हो या गैर सरकारी, उसके उद्देश्यों की सफलता के लिए प्रभावशाली संचार व्यवस्था आवश्यक होती है। इन संगठनों म कार्य करने वाले लोग यदि संगठन के उद्देश्यों, नीतियों और पृष्ठभूमि परिस्थितियों को समझ लें तो वे उस संगठन में अधिक प्रभावशाली तरीके से कार्य कर सकते हैं। किन्तु यह संचार के बिना संभव नहीं हैं। संचार के अभाव में संगठन के कर्मचारियों और संगठन के उद्देश्यों में एकरूपता स्थापित नहीं हो पाती है। संगठन और उसके कार्यकर्ताओं के मध्य विश्वास प्राप्त करने के लिए उस अभियान का अध्यक्ष जो भी कार्य योजना तैयार करता है वह संचार के बिना न तो कार्यकताओं को संसूचित होती है और न ही जनता तक उनके बारे में कोई सूचना पहुंच पाती है। संगठन के प्रभावशाली आँकलन के लिये संचार का प्रभावी होना आवश्यक है। किसी भी संगठन की प्रशासकीय कार्यकुशलता संगठन के द्वारा आँकी गयी संचार की व्यवस्थाओं पर निर्भर करती है। प्रशासनिक अधिकारियों का सर्वाधिक समय इसी कार्य में लगा होता है। संचार का सम्बन्ध प्रशासन के अन्य पक्षों यथा नियोजन, पर्यवेक्षण मन्वय, निर्णय लेने इत्यादि से निकट का है।

चेस्टर बर्नार्ड ने सही कहा कि संचार से सहायता प्राप्त नहीं होती, जिसे समझा न जा सके। इसी प्रकार टीड के अनुसार तरह–तरह के मस्तिष्कों को एक सामान्य उद्देश्य प्राप्ति के लिए एक दूसरे के पास लाना होता है

और यह कार्य संचार की सहायता के बिना किसी भी प्रशासनिक संगठन में सम्भव नहीं। प्रभावी संचार के अभाव में प्रभावी पर्यवेक्षण, नेतृत्व और नियंत्रण नहीं हो सकता। यह सत्य है कि जो प्रशासक संचार कार्य में श्रेष्ठ होते हैं वे प्रभावी प्रशासक सिद्ध होते हैं और जिन प्रशासकों का संचार निम्न श्रेणी का होता है वे प्रशासन तंत्र में अपनी छाप नहीं छोड़ पाते । संचार के इसी महत्त्व के कारणों ने इसे प्रशासकीय संगठन की रक्तधारा कहा है। विद्वान पिफनर इसे प्रबन्धन का ह्रदय घोषित करते हैं।

संचार का अभिप्राय
Meaning of Communication

दो या दो से अधिक व्यक्तियों के मध्य विचारों के आदान–प्रदान को संचार कहा जा सकता है। यह एक ऐसी वैयक्तिक प्रक्रिया है जिसमें लोगों के मध्य व्यवहार का आदान–प्रदान होता है। संचार शब्द का प्रयोग प्रायः ज्ञान के प्रसार या सूचना भेजने के अर्थ में किया जाता है। किन्तु व्यापक अर्थ में यह केवल सूचना के आदान–प्रदान का सूचक ही नहीं हैं बल्कि उस सूचना को ग्रहणकर्ताओं ने समझ लिया है, इस बात का द्योतक है। वस्तुतः टीड का यह विचार सही है कि संचार का लक्ष्य समान विषयों पर मस्तिष्क में स्थापित करना है।

शब्द कोष के अनुसार, "सचार'' से अभिप्राय सूचना देना या समाचार देना है। लोक प्रशासन में इस शब्द का कुछ विस्तृत अर्थ लिया जाता है। संचार को परिभाषित करते हुए महत्त्वपूर्ण विद्वानी ने निम्नलिखित परिभाषाएं दी हैं जिनके आधार पर संचार को भली–भांति समझा जा सकता है।

मिलेट के अनसार ''किसी सांझे प्रयोजन की साझा समझ'' (Communication means shared understanding of shared purpose) संचार है।

इस प्रकार संचार का अर्थ केवल सूचना देना नहीं बल्कि समझना है। संचार में विचारों, का आदान–प्रदान सम्मिलित है और इसमें विचारों की साझेदारी की अपेक्षा की गयी है। लारेन्स एप्पलवी ने संचार को परिभाषित करते हुए लिख है कि संचार वह प्रक्रिया है जिससे एक व्यक्ति अपने विचार से दूसरे को अवगत कराता है।''

(The Process where by one person makes his ideas and feelings known to another.)

इसी प्रकार मैक फारलेण्ड ने इसे मानव समुदाय के बीच अर्थ पूर्ण अन्तक्रिया की प्रक्रिया (As the process of meaningful interaction among human beings) के रूप में देखा है।

हरमन और जेलदा रूडमन ने लिखा है कि ''प्रबन्ध और मानव व्यवहार के मध्य सम्बन्ध का पुल बनाने का काम संचार करता है। (Communication is the underlying medium of bridging the route between human behaviour and management)

इनकी मान्यता है कि किसी भी संगठन में उपलब्धियों और उत्पादकता की सफलता श्रेष्ठ संचार के साधनों पर निर्भर करती है।

प्रशासनिक संगठन में अच्छे कार्य सम्बन्ध स्थापित करने के लिए सफल संचार की आवश्यकता है। सफल सचार आसान नही होता। इसके लिये एक व्यक्ति में अपने विचारों को दूसरे व्यक्ति के सम्मुख पूर्ण रूप से प्रकट करने की क्षमता होनी चाहिए और यह तभी संभव है जब उस व्यक्ति के विचार पूर्ण रूप से स्पष्ट और परिपक्व हो । संचार द्वारा निर्णय लेने क कार्य पर एक दूसरे से जुड़े हुए हैं और निर्णय कितना ही श्रेष्ठ क्यों न हो जब तक उसका सही संचार नहीं किया जाये तब तक उसकी सफलता संदिग्ध रहती है।

संचार के तत्व
Elements of Communication

मिलेद और रेडफील्ड के अनुसार प्रशासनिक संचार व्यवस्था में निम्नांकित तत्व पाये जाते हैं

1. संचार करने वाला (A Communicator)

सामान्यतः लोक प्रशासन में संचार का कार्य प्रशासक एवं उसके सहयोगी अधिकारियों द्वारा किया जाता है। सैनिक प्रशासन में प्रत्येक आदेश कमाण्डर के नाम से संचालित होता है। इस तरह संचार में उसके प्रेषित भेजने वाला या बोलने वाला संचारक प्रमुख तत्व है।

2. एक से दूसरे को देना (Transmission Procedure)

संचार का दूसरा तत्व है एक व्यक्ति द्वारा निर्देश को दूसरे व्यक्ति को प्रेषित किया जाना या संदेश कहना, भेजना अथवा निकालना। संचार के लिए संगठन में कोई माध्यम अपनाया जा सकता है। किन्तु सबसे उपयुक्त माध्यम वह होता है जिसे प्रायः प्रयोग में लाया जाता है।

3. प्राप्तकर्ता (Recipient)

संचार के लिए उसके श्रोता या प्राप्तकर्ता का होना अनिवार्य है अर्थात् सन्देश जिसे भेजा गया उसका प्राप्तकर्ता संचार का एक महत्वपूर्ण तत्व है।

4. उत्तर (Response)

संचार में सन्देश प्राप्तकर्ता संदेश का प्रत्युत्तर या उसके द्वारा क्रिया या उसके जवाब का होना आवश्यक है। संचार में उसकी प्रतिक्रिया या उसका उत्तर आमतौर पर औपचारिक रूप से दिया जाता है।

उपर्युक्त विद्वानों मिलेट और रेडफील्ड ने संचार के प्रकारों अर्थात् आदेश, नियम, मैनुअल, पत्र प्रतिवेदन इत्यादि को भी संचार का एक आवश्यक तत्व माना है।

इन समस्त तत्वों में संचार करने वाला और संदेश करने वाला, महत्त्वपूर्ण हैं। इस प्रकार संचार को एक ऐसी प्रणाली के रूप में मान्यता दी जा सकती है। जिसमें एक सिरे पर सन्देश प्रसारक और दूसरे सिरे पर संदेश प्राप्तकर्ता होता है। इसमें इस बात का ध्यान रखना पड़ता है कि जो संदेश दिया गया है उसे उसी रूप में प्राप्तकर्ता द्वारा ग्रहण किया जाये। सन्देश का सबसे महत्त्वपूर्ण पहलू यह है कि जिस रूप में और जिस भाव तथा उद्देश्य को लेकर वह प्रसारित किया गया है उसे प्राप्त करने वाला भी उसी रूप में समझे और ग्रहण करे। अनेक बार ऐसा होता है कि जल्दबाजी में संदेश के सार को ठीक तरह से ग्रहण नहीं किया जाता तो ऐसी स्थिति में अनर्थ हो सकता है। ऐसी स्थिति में संदेश प्रसारक और प्राप्तकर्ता दोनों के द्वारा इस संदेश में सावधानी अपेक्षित होती है।

संचार के प्रकार
Types of Communication

जिस दिशा में संदेश का संचार किया जाता है उस दृष्टि से संचार को निम्नांकित तीन प्रकारों में बांटा जाता है

(1) ..... से निम्नगामी संचार

(2) निम्न ..... उर्ध्वगामी संचार, और

(3) सम–स्तरीय संचार।

उर्ध्व से निम्नगामी संचार (Downward Communication)

संगठन के सर्वोच्च स्तर या पद सोपान के उच्च स्तरों पर जो निर्देश या संदेश निर्णय के रूप में उत्पन्न होते हैं उन्हें संगठन की निम्न पद सोपानात्मक श्रृंखलाओं तक पहुंचाने की गतिविधियों को उर्ध्व से निम्नगामी संचार कहा जाता है। उच्च अधिकारियों द्वारा अपने अधीनस्थ अधिकारियों को जो प्रत्यायोजन किया जाता है वह इस संचार का एक उदाहरण माना जा सकता है। इसे उच्च अधिकारी द्वारा अधीनस्थ अधिकारियों के मध्य संचार के रूप में भी मान्यता दी जा सकती है।

निम्न से उर्ध्वगामी संचार (Upward Communication)

इस प्रकार के संचार में संगठन की अधीनस्थ पद सोपान श्रृंखलाओं से संदेश उच्च अधिकारियों को सम्प्रेषित किया जाता है। प्रायः उच्च अधिकारियों को भेजे जाने वाले इस संचार में अधीनस्थ अधिकारियों द्वारा विभिन्न प्रकार के प्रस्ताव प्रतिवेदन, अनुशंसाए या सुझाव प्रस्तुत किये जाते हैं। यह संदेश प्रकृति से निर्देशात्मक नहीं होते इनमें कोई पहल किये जाने के प्रस्ताव भी नहीं होते मात्र सुझाव हो सकते हैं जिन पर वे उच्च अधिकारियों से स्वीकृति चाहते हैं।

सम–स्तरीय संचार (Lateral Communication)

किसी संगठन के समान स्तरीय कार्मिकों में संदेश का जो आदान–प्रदान होता है उसे समस्तरीय संचार कहा जा सकता है। यह संचार एक ही संगठन के सम–स्तरीय या भिन्न अभिकरणों के सम–स्तरीय कर्मचारियों के मध्य हो सकता है। इस प्रकार के संचार का संगठन के उद्देश्यों की प्राप्ति में विशेष महत्त्व होता है। यदि किसी संगठन के कर्मचारी एक एकीकृत इकाई के रूप में काम करते हैं तथा प्रायः उनके मध्य संगठन के उद्देश्यों, कार्य की प्रकृति और प्रक्रियागत जटिलताओं के बारे में संदेश का आदान–प्रदान होना स्वाभाविक होता है। ऐसा किये जाने से संगठन के उद्देश्य प्राप्त करने में आसानी होती है। विद्वान फ्रेडलुथांस ने इसे अतक्रियात्मक संचार भी कहा है। इस संचार के मूल कार्यों में समन्वय, समस्याओं के समाधान, सूचनाओं का आदान–प्रदान और तनावों को सुलझाने के उद्देश्य प्रमुख होते हैं।

कतिपय विद्वानों ने संचार को आंतरिक और बाह्य संचार के रूप में भी परिभाषित और विभाजित किया है।

आंतरिक एवं बाह्य संचार (Internal and External Communication)

आंतरिक संचार किसी एक संगठन और उसके कर्मचारियों के मध्य होता है। किसी संगठन के उद्देश्यों को शीघ्र पूरा करने के लिए इसका विशेष महत्त्व है। इसके माध्यम से संगठन की प्रक्रियाओं की जटिलता को कम किया जा सकता है। ऐसे संगठनोंः जिनका ढांचा भौगोलिक दृष्टि से पूरे देश या अनेक राज्यों में फैला हुआ है उनके उद्देश्यों के प्रति तारतम्य, संगीत और समन्वय प्राप्त करने के लिए आतरिक संचार का प्रबल महत्त्व है। डाक, तार, रेलवे और विदेश मंत्रालयों की संरचना ऐसी है जिसका पर्याप्त विस्तार होता है, अतः इस. प्रकार के संगठनों में जब तक नीतियों, कार्यक्रमों और परिवर्तित निणर्यों के प्रति संचार के माध्यम से शीघ्र संदेश का आदान–प्रदान न हो तब तक उन संगठनों की सफलता की आशा नहीं की जा सकती। संगठन की केन्द्रीय इकाई और राज्य या दूरस्थ इकाई के मध्य इस प्रकार के संचार के माध्यम से संदेशों का आदान–प्रदान होता है और यदि संचार पर ध्यान न दिया जाये तो न तो निर्णयों से इकाइयों को संसूचित किया जाना संभव हो सकेगा और न ही उनका कार्यान्वयन संभव होगा। इस दृष्टि से संगठन में आंतरिक संचार का, जो उर्ध्व और समान स्तरीय सभी प्रकार का हो सकता है, विशिष्ट महत्त्व है।

बाह्य संचार से अभिप्राय यह है कि कोई संगठन जब अपने उद्देश्यों नीतियों और कार्यक्रमों के बारे जनता को परिचित कराना चाहता है तो बाह्य सचार के माध्यम से यह संभव हो पाता है। इसे लोक सम्पर्क भी कहा जा

सकता है। लोक सम्पर्क की परिधि में आने वाले इस संचार का भी आधुनिक युग में प्रशासनिक संगठनों में विशेष महत्त्व है।

संचार के साधन
Means of Communication

संचार को प्रसारित करने के कतिपय साधन इस प्रकार हैं:

(क) व्यक्ति सम्पर्क (Personal Contacts):

किसी भी संगठन में अधिकारी और अधीनस्थों के मध्य संचार का यह पर्याप्त प्रभावी तरीका है। संचार करने वाले दोनों पक्ष आमने सामने, टेलीफोन, टेलीप्रिंटर, वायरलेस इत्यादि के माध्यम से संदेश का संचार या आदान–प्रदान कर सकते हैं । संचार के अत्याधुनिक साधनों के कारण संगठनों की दूरी अब कम हो गयी है और संदेश का संचार सुगम हो गया है। व्यक्तिगत संपर्क में साधनों के उपयोग की अपेक्षा आमने–सामने बातचीत के माध्यम से संदेश के संचार का प्रभावी तरीका माना जाता है। यद्यपि इस विधि को विस्तृत संगठनों में अपनाया जाना कठिन होता है।

व्यक्तिगत सम्पर्क की दूसरी प्रभावी विधि सम्बद्ध लोगों की औपचारिक बैठक का आयोजन किया जाना है। ऐसी बैठकें विधिक रूप से एक निश्चित अंतराल के पश्चात हो सकती है या उन्हें आवश्यकता के अनुसार आहुत भी किया जा सकता है।

(ख) औपचारिक पत्राचार (Formal Correspondence)

आधुनिक लोक प्रशासन में पत्र व्यवहार संचार का एक ऐसा तरीका है जो सामान्यतः उपयोग में लाया जाता है। संचार का यह तरीका ईसा पूर्व तीसरी और चौथी शताब्दी में भी प्रयोग में लाया जाता था। आधुनिक लोक प्रशासन में भी लिखित पत्र व्यवहार के माध्यम से संचार एक अपरिहार्य प्रणाली बन गया है। प्रशासनिक प्रक्रिया अब इतनी जटिल हो गयी है कि उत्तरदायित्व के निर्वाह और निर्धारण के लिए निर्णयों और संदेशों को लिखित रूप में रखा जाना आवश्यक हो जाता है। आजकल तो कार्यालय की समस्त प्रणाली पत्रावलियों के माध्यम से संचालित की जाती है। यद्यपि इस प्रणाली के कारण आधुनिक सरकारों को फाईल या कागज की सरकार भी कहा जाने लगा है और इसी कारण इस पर लाल फीताशाही के दोष भी लगाये जाते हैं। किन्तु इन समस्त बातों के बावजूद औपचारिक पत्र व्यवहार संचार का एक महत्त्वपूर्ण तरीका है।

(ग) फार्म (Forms)

विभिन्न प्रकार की सामान्य सूचनाओं के बारे में प्रपत्र छपा लिया जाता है और उनके माध्यम से संदेश एक स्थान से दूसरे स्थान पर भेजने की यह प्रणाली लोक प्रशासन में अब अत्यन्त लोकप्रिय हो गयी है।

(घ) निर्देश (Instructions)

विभिन्न प्रकार के निर्देश अथवा आदेश कार्यालयों में निर्देश पत्रों के माध्यम से एक स्थान से दूसरे स्थान पर भेजे जाते हैं। यह निर्देश प्रायः लिखित परिपत्र के जरिये भेजे जाते हैं। इन निर्देशों के माध्यम से किसी संगठन में कार्य करने वाले अधिकारियों कर्मचारियों के कर्त्तव्यों का निर्धारण भी किया जाता है।

(ड) आंतरिक प्रचार (Internal Publicity)

प्रायः सभी प्रशासनिक संगठनों के बारे में सूचनाओं के आदान–प्रदान के लिए कतिपय नोटिस, परिपत्र, स्टाफ जनरल और सामयिक प्रतिवेदन तैयार किये जाते हैं। इन सामग्रियों में संगठन के उद्देश्यों, कार्यवाहियों, कार्यक्रमों, योजनाओं, गतिविधियों और उपलब्धियों तथा संगठन कर्मचारी वर्ग द्वारा वित्त इत्यादि का विवरण प्रस्तुत किया जाता है।

संचार की बाधाएँ
Difficulties of Communication

संगठन के सफल कार्यकरण हेतु संचार की जितनी आवश्यकता है उसके प्रभावी होने के मार्ग में उतनी ही बाधाएँ हैं। इनमें प्रमुख इस प्रकार हैं:

(1) भाषा सम्बन्धी समस्या (Language Difficulty)

हमारे विचारों के आदान–प्रदान और सम्प्रेषण में भाषा एक सशक्त माध्यम का काम करती है। किन्तु विभिन्न भाषा बोलने वाले देश में, विभिन्न भाषाओं को समझने वाले संगठन में यह भाषा ही संचार के माध्यम में एक कठिनाई बन जाती है। एक प्रदेश की भाषा दूसरे प्रदेश में समझ पाना, हमारे देश में एक व्यावहारिक कठिनाई है। इसी प्रकार, इस सन्दर्भ से एक कठिनाई यह भी है कि प्रशासन की भाषा को जनसाधारण नहीं समझ पाता है। प्रशासन के कामकाज में उपयोग की जाने वाली भाषा इतनी तकनीकी और जटिल होती है कि आम आदमी समझ नहीं पाता है। न्यायालय, राजस्व विभाग और इसी तरह के जन साधारण से जुड़े भागों में जो प्रपत्र तैयार किये जाते है उनकी जटिल और तकनीकी भाषा प्रायः संचार में बाधा बन जाती है।

(2) मस्तिष्क की दिशा और स्थिति (Frame of Mind)

प्रायः प्रत्येक व्यक्ति की अपनी स्थिति और वैचारिक स्थिति संचार को समझने के लिए पृथक–पृथक होती है। यह भी हो सकता है कि एक संदेश का प्रभाव दो भिन्न–भिन्न व्यक्तियों पर उनकी वैचारिक और मनोदशा के अनुसार अलग–अलग पड़े। इस स्थति में यदि भाषागत कठिनाई है तो संदेश और संचार में टूट–फूट होने की और अधिक संभावना हो जाती है। इस प्रकार संदेश देने वाले और ग्रहण करने वाले लोगों की मनोदशा, स्वभाव और मानसिक स्थिति संचार को समझने और ग्रहण करने के मार्ग में एक विशेष बाधक तत्व का काम करती है। प्रभावी संचार के लिए इस स्थिति के बारे में पूर्व समझ आवश्यक है।

(3) संगठन के आकार तथा दूरी की बाधा (Geographical Distance)

यदि संगठन बड़ा हो, भौगोलिक दृष्टि से दूर तक फैला हो और उसमें कार्यरत कर्मचारियों की संख्या अत्याधिक हो तो उस संगठन में संचार संबंधी बाधाएं उत्पन्न हो सकती हैं। संगठन में जितने अधिक सदस्य होंगे और संचार की प्रक्रिया में संदेश जितने अधिक लोगों के पास होकर गुजरता है उतनी ही अधिक कठिनाई संचार में उत्पन्न हो सकती है।

प्रत्येक व्यक्ति और प्रत्येक स्तर पर संचार की विषय–वस्तु में यदि यत्किंचित भी परिवर्तन होगा तो संदेश विफल हो सकता है।

(4) पद सोपान संबंधी बाधाएं (Status Distance)

यह सुविदित है कि प्रत्येक संगठन पद सोपान पर आधारित होता है। संगठन में संदेश पद सोपान की विभिन्न श्रृंखलाओं में नियमपूर्वक गुजरता है। यह संदेश की उर्ध्वगामी और निम्नगामी दोनों स्थितियों में एक आवश्यक प्रक्रिया है। अनेक बार उचित पद सोपान से संदेश प्राप्त न होने के कारण प्राप्तकर्ता उसे ग्रहण करने से औपचारिक या अनौपचारिक रूप से इंकार कर सकता है। इससे संदेश के संचार में विलम्ब तो होता ही है संगठन में आवश्यक विवाद की भी स्थिति उत्पन्न हो सकती है। संदेश चाहे सत्य ही क्यों न हो किन्तु उसका संचार यदि उपयुक्त पद सोपानात्मक श्रृंखलाओं के माध्यम से नहीं हो रहा है तो उस पर विश्वास न किये जाने के कारण अनेक बार संगठनों को पर्याप्त हानि उठानी पड़ती है। इस प्रकार परिस्थिति–जन यह बाधा संचार के मार्ग में एक संगठनात्मक अंवरोध मानी जाती है।

(5) सैद्धान्तिक बाधाएं (Theoretical Barriers)

प्रत्येक व्यक्ति की पृष्ठभूमि शिक्षा, सामाजिक और राजनैतिक विचारों में भिन्नता होती है, उनके अपने अलग–अलग अनुभव होते हैं। वे सभी अपने सैद्धान्तिक ज्ञान की पृष्ठभूमि और सिद्धान्तों के अनुसार सोच और व्यवहार करते हैं। वे अपनी ही दृष्टि से समस्या की व्याख्या करने लगते हैं और इस स्थिति में उन्हें

जो संदेश प्राप्त होता है उसकी भी वे अपने सैद्धान्तिक अनुभव के आलोक में व्याख्या करते हैं जिससे यह हो सकता है कि संदेश की विषय–वस्तु में अकारण ही परिवर्तन हो जाए। प्रत्येक व्यक्ति की यह पृष्ठभूमि संगठन में संचार की प्रमुख बाधा मानी जाती है।

(6) **संचार के निश्चित और मान्य सिद्धान्तों का अभाव (Lack of Approved Means of Communication)**

संगठन में कार्य औपचारिक व अनौपचारिक दोनों रूपों में होता है। अनेक बार ऐसे अवसर आते हैं जब कार्य का सम्पादन औपचारिक रूप से नहीं हो सकता । पहले से ही समन्वय और संचार अनौपचारिक तरीकों से करना पड़ता है। किन्तु औपचारिक तरीकों के अभाव में संचार की निश्चितता में संशय बना रहता है। यह कारण भी, संचार के प्रभावी होने में एक बाधा बनता है।

विद्वान हरमन एवं जेल्दारूदमन ने भी प्रभावी संचार की निम्न बाधाएँ बतायी हैं–

(1) सन्देश का कमजोर सम्प्रेषण (Poorly Expressed Messages)
(2) सन्देश की गलत व्याख्या (Misinterpretation of Message)
(3) कमजोर ग्राह्यता (Poor Retention)
(4) अभिप्रेरणा का अभाव (Lack of Motivation)
(5) समय पूर्व मूल्यांकन (Premature Evaluation)
(6) भय की भावना (A Sense of Fear)
(7) विचार–विमर्श में विफलता (Failure to Discuss)

इन बाधाओं के निराकरण के लिए उपर्युक्त विद्वानों ने अधिकारियों/कर्मचारियों के विचारों की एकता और सन्देश देने वाले दोनों पक्षों की भावनाओं को समझने तथा संगठन में कार्यकताओं द्वारा किये जाने वाले कार्यों का पूर्व अनुमान और उसकी दिशा को समझने ने नेतृत्व के गुणों पर जोर दिया है।

प्रभावी और अच्छे संचार के लिए आवश्यक बातें

विद्वान टेरी ने प्रभावी और अच्छे संचार मे निम्न तत्वों की अपेक्षा की है –

1. पूर्ण जानकारी स्वयं उपलब्ध करानी चाहिए।
2. परस्पर विश्वास उत्पन्न किया जाना चाहिए।
3. अनुभव के समान आधार की खोज की जानी चाहिए।
4. ऐसे शब्दों का प्रयोग संचार में किया जाना चाहिए जो आपस में सभी को ज्ञात हो।
5. पूर्व प्रसंग ध्यान में रहना चाहिए।
6. सन्देश प्राप्तकर्ता का ध्यान आकृष्ट करना और उसे बनाये रखना चाहिए
7. उदाहरणों तथा दृश्य साधनों को काम में लाया जाना चाहिए और
8. विलम्बकारी प्रक्रियओं के प्रयोग से बचना चाहिए।

महत्त्वपूर्ण प्रश्न

1. संचार से आपका अभिप्राय क्या है? इसके तत्त्वों का वर्णन कीजिए
2. संचार से आप क्या समझते है।? इसके साधनों व माध्यमों का वर्णन कीजिए।

अध्याय - 3

लोक सम्पर्क

Public Relations

भूमिका

आधुनिक लोकतांत्रिक राज्यों में प्रभुसत्ता लोगों के हाथ में होती है। पुलिस राज्य की पुरानी धारणा में राज्य के कार्य सीमित होते थे तथा प्रशासक और लोगों का सम्बन्ध मालिक और नौकर जैसा था। नागरिक प्रशासकों के आदेश चुपचाप स्वीकार कर लेते थे तथा दोनों में कोई मानवीय सम्पर्क नहीं था। लोग प्रशासकों से डरते थे तथा उन्हें लोगों के जीवन में घुसपैठिये समझा जाता था। लोग राज्य के कार्यों में कोई रूचि नहीं लेते थे। लोकतन्त्र के उदय होने से पुलिस राज्य की धारणा समाप्त हो गई है तथा इसके स्थान पर कल्याणकारी राज्य की नयी भावना ने जन्म लिया है। आधुनिक युग में सभी राज्य चाहे उनमें किसी प्रकार की भी सरकारी संरचना हो, ऐसी सामाजिक व्यवस्था स्थापित करने में लगे हुए हैं जिसमें मनुष्य स्वतन्त्रता से जीवन व्यतीत कर सके तथा अपना विकास कर सके। इससे राज्य के कार्यकलाप बढ़ गये हैं तथा राज्य पालने से चिता तक तथा प्रातः से सायं तक नागरिकों के सारे कार्यों की व्यवस्था करता है। राज्य की धारणा तथा कार्यों में परिवर्तन आने के कारण प्रशासनिक संरचना में भी परिवर्तन लाने की आवश्यकता अनुभव हो गई है ताकि यह परिवर्तन स्थितियों के अनुकूल बन सके। राज्य के बढ़ते हुए दायित्व ने प्रशासन को लोगों के समीप ला दिया है। लोग भी प्रशासन के बारे में जागरूक हो गये हैं तथा वे पहले की तरह चुपचाप आदेश प्राप्त नहीं करते। इसके विपरीत उनका दृष्टिकोण बहुत आलोचनात्मक हो गया है। इस आलोचनात्मक दृष्टिकोण के कारण प्रशासकों का कार्य और भी कठिन हो गया है। एक ओर तो उन्हें आदेश है कि वे वैधानिक रूप से अभिव्यक्त लोगों की इच्छा को पूरा करें, जिसके अधीन वे कार्य कर रहे हैं तथा दूसरी ओर प्रशासकों का यह भी कार्य है कि वे नागरिक को यह अनुभव करवाएं कि उनके हित का ध्यान रखा जा रहा है। किन्तु यह कठिनाई ऐसी नहीं जिसे दूर न किया सके। इसके लिए कर्मचारियों तथा लोगों में उचित सांमजस्य स्थापित करना आवश्यक है। लोकतन्त्र में प्रशासन को भी लोकतन्त्रीय होना चाहिए। इसे लोगों को अपना स्वामी समझ कर उनकी ओर पूरा ध्यान देना चाहिए तथा उनके साथ नम्रता का व्यवहार करना चाहिए। इसे यह ज्ञात होना चाहिए कि लोग इसके कार्यों के बारे में क्या विचार रखते हैं तथा वे क्या चाहते हैं। लोगों की शिकायतों को सुन कर और यदि वे उचित हों तो उन्हें दूर किया जाना चाहिए। यदि लोगों की कठिनाइयों का ध्यान में न रखा जाये तो लोग पर अफसरशाही का आरोप लगाते हैं। यदि लोग इसके विरूद्ध हों तो कोई भी प्रशासन सफल नहीं हो सकता। सरकारी अधिकारियों को लोगों का सहयोग प्राप्त करना चाहिए। यह तभी सम्भव है यदि लोगों को सार्वजनिक मामलों के बारे में ठीक–ठीक, विस्तृत तथा समय पर सूचना दी जाये।

लोक सम्पर्क का अर्थ और परिभाषा

Meaning and Definition of Public Relations

लोक सम्पर्क के मुख्य उद्देश्य सरकारी कार्य तथा नीतियों की सूचना लोगों को देना तथा उनकी प्रतिक्रियाओं को जानना है। दूसरे शब्दों में लोक सम्पर्क में वे सभी कार्यकलाप आ जाते हैं जो सरकारी कार्यों के बारे में लोगों को सूचना देते हैं तथा लोगों के विचारों तथा इच्छाओं के बारे में सरकार को बताते है। जान डी. मिलेट के अनुसार, "लोक सम्पर्क का अर्थ इस बात की जानकारी प्राप्त करना है कि लोग क्या आशा करते हैं तथा

इस बात का स्पष्टीकरण देना कि प्रशासन उन माँगों को कैसे पूरा कर रहा है। इस तरह लोक सम्पर्क का काम केवल जनता को सूचना देना ही नहीं है बल्कि जनता की इच्छाओं को जानना भी है तथा प्रशासक के लिए लोगों के ह्रदय में सदभावना उत्पन्न करना भी है। किसी भी प्रशासकीय अभिकरण के लिए सद्भावना बहुत आवश्यक है क्योंकि इससे ही लोगों का सहयोग तथा समर्थन प्राप्त किया जा सकता है। यह, जैसा कि डा. एल. डी. व्हाइट ने कहा है, जनता के प्रति नम्रता तथा सहानुभूति प्रदर्शित करने से ही हो सकता है। जे.एच. ब्रेबनर के मतानुसार "आधुनिक प्रशासन में लोक सम्पर्क तथा प्रचार के कार्य को साधारणतम शब्दों में ऐसे स्पष्ट किया जा सकता है कि यह उद्योग में तथा इससे बढ़कर सरकार में मानवीय अंश के अध्ययन से सम्बन्धित है।" हारवुड, एल. चाइल्ड्स के कथानुसार, "लोक सम्पर्क की परिभाषा इस प्रकार दी जा सकती है कि ये हमारे व्यक्तिगत तथा सामूहिक व्यवहार के वे पक्ष हैं जिनका निजी तथा व्यक्तिगत की अपेक्षा सामाजिक महत्त्व अधिक है।" डब्ल्यू.टी.पैरी के अनुसार, लोक सम्पर्क का अर्थ है व्यापार, उद्योग अथवा संगठन तथा इस'द्वारा सेवित जनता के बीच अच्छे, न्यायपूर्ण तथा पारस्परिक लाभदायक सम्बन्धों को विकसित करना।" रक्स हारलो कहते हैं। "लोकसम्पर्क एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके द्वारा कोई संगठन सभी संबंधित पक्षों की आवश्यकताओं तथा इच्छा का विश्लेषण करता है ताकि यह उनकी ओर अधिक ध्यान दे सके।" डब्ल्यू. बी. ग्रेवस लिखते हैं, "लोक सम्पर्क का अर्थ कवल एजेन्सी से जनता को सूचना भेजना नहीं है बल्कि जनता से एजेन्सी को भी सूचना भेजना है।"

लोक सम्पर्क की उपर्युक्त परिभाषाओं से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि लोक सम्पर्क का उद्देश्य केवल लोगों को सूचित करना तथा यह जानना ही नहीं है कि लोग क्या चाहते हैं बल्कि प्रशासनिक मशीनरी के लिए लोकप्रिय सदभावना भी स्थापित करना है।

लोक सम्पर्क के बारे में स्पष्ट रूप से जानने के लिए हमें इसे प्रचार एवं प्रोपेगण्डा से पृथक करना चाहिए।

लोक सम्पर्क तथा प्रचार (Public Relations and Publicity) –लोक सम्पर्क तथा प्रचार के बारे में प्रायः अस्पष्टता पाई जाती है। कई सरकारें अपने लोक सम्पर्क अधिकारियों को प्रचार अधिकारी कह कर पुकारती हैं। इसमें सन्देह नहीं है कि दोनों पदावलियाँ जुड़ी हुई हैं तथा दोनों भिन्न प्रकार के कार्य नहीं हैं बल्कि एक ही चीज के दो पक्ष हैं। जे.एच ब्रेवनर के मतानुसार लोक सम्पर्क तथा प्रचार में अन्तर उनके दृष्टिकोण की तकनीक में है। प्रचार जन–समूह से व्यवहार करने की कला है जबकि लोक सम्पर्क व्यक्तियों से सम्बन्धित है। इस प्रकार लोगों को सामूहिक रूप से सूचना देना प्रचार है तथा व्यक्तियों से सम्पर्क करना लोक सम्पर्क है। कई लेखक लोक सम्पर्क को व्यक्तिगत तथा समूह सम्बन्धों दोनों के लिए प्रयुक्त करते हैं। इस दृष्टिकोण से प्रचार लोक सम्पर्क की एक शाखा बन जाता है।

लोक सम्पर्क तथा प्रोपेगंडा (Public Relations and Propaganda) – जैसा कि हमने ऊपर देखा है लोक सम्पर्क का एक महत्त्वपूर्ण भाग प्रचार है। प्रायः प्रचार को प्रोपेगण्डा समझ लिया जाता है। दोनों में निम्नलिखित अन्तर हैं:

(1) प्रचार का उद्देश्य सूचना देना है जबकि प्रोपेगण्डा का उद्देश्य आचार को प्रभावित करना है।

2) प्रचार का स्त्रोत सदा ज्ञात होता है जबकि प्रोपेगण्डा का स्त्रोत छुपा हुआ होता है।

(3) प्रचार का उद्देश्य बुरा नहीं होता जबकि प्रोपेगण्डा स्वार्थ पूर्ति करता है तथा गलत सूचना और तोड़े–मोड़े तथ्य प्रस्तुत करता है।

लोक सम्पर्क अधिकारी को प्रोपेगण्डा नहीं करने दिया जा सकता। उसका कार्य प्रचार है न कि प्रोपेगण्डा। लोगों को ठीक तथ्य दिये जाने चाहिए। युद्ध के समय में सरकार कई बार प्रापेगण्डा भी करती है ताकि शत्रु के प्रापेगण्डा को रद्द किया 'जा सके तथा लोगों और सैनिकों का उत्साहवर्द्धन किया जा सके।

लोक सम्पर्क के तत्त्व
Elements of Public Relations

मिलेट के अनुसार लोक सम्पर्क के चार तत्त्व हैं:

(1) लोगों की इच्छाओं तथा आकांक्षाओं को जानना।
(2) लोगों को परामर्श देना।
(3) लोगों तथा अधिकारियों के मध्य सन्तोषजनक सम्पर्क स्थापित करना ।
(4) सरकार जो कुछ कर रही है उसके बारे में लोगों को सूचित करना।

1. लोगों की इच्छाओं और आकांक्षाओं को जानना (To know the aspirations of the People)

लोक सम्पर्क के चार तत्त्वों में से पहला तत्त्व लोकमत जानने के लिए लोगों की इच्छाओं तथा आकांक्षाओं को जानना है। लोकमत जानने के लिए निम्नलिखित साधन हैं:

1. **प्रेस (Press)** – लोगों के लिए विचार अभिव्यक्त करने का प्रेस एक बहुत महत्तवपूर्ण साधन है। समाचारपत्रों तथा पत्रिकाओं में सरकार की नीतियों तथा कार्यक्रमों के बारे में लोगाों की प्रतिक्रियाएँ प्रतिबिम्बित होती है। सम्पादक के नाम पत्रों में सरकार की किसी विषेष निती की प्रषंसा अथवा निन्दा की जाती है अथवा शिकायतें की जाती हैं। मुख्य सम्पादकों द्वारा लिखे गए सम्पादकीय भी सरकार की रचनात्मक आलोचना करते हुए लोगों की शिकायतों को दूर करने का सुझाव देते हैं। लोक सम्पर्क विभाग के अधिकारी समाचार पत्रों में से ऐसी बातें निकाल कर सम्बन्धित विभागों को भेजते हैं ताकि उन्हें उनके द्वारा संचालित सवाओं के बारे में लोकमत का ज्ञान हो सके।

2. **मंच (Platform)** – सार्वजनिक व्यक्तियों विषेषतया विभिन्न नेताओं द्वारा दिए गए भाषण भी किसी विषेष विषय पर जनमत को परिलक्षित करते हैं। सार्वजनिक बैठकों के बारे में गुप्तचरों द्वारा सरकार को सूचना मिलती है अथवा संयोजक स्वयं ही 'मांगों की सूची' सरकार को प्रस्तुत कर के देते हैं। इस प्रकार सरकार को किसी विषेष विषय पर लोकमत का ज्ञान हो जाता है।

3. **प्रदर्शन (Demonstration)** – यदि मौखिक अथवा लिखित शब्दों से प्रषासन पर कोई प्रभाव न पड़े तो लोग प्रदर्षन आदि द्वारा सरकार तक अपने विचार पहुँचात हैं। प्रदर्षन किसी विषेष सरकारी नीति के प्रति सन्तोष अथवा निन्दा प्रकट करने के के लिए आयोजित किये जा सकते हैं। सराहनीय कार्यक्रमों के प्रति निन्दा प्रकट करते हैं। प्रायः प्रदर्षन किसी विषेष मांग को मनवाने अथवा सरकार को कोई कदम वापस लेने पर मजबूर करने के लिए किए जाते हैं। प्रदर्षन शान्तिपूर्ण भी होते है लेकिन कई बार हिंसात्मक भी हो जाते हैं। साधारण लोकमत अथवा किसी विषेष वर्ग का मत हर कहीं इन साधनों द्वारा अभिव्यक्ति पाता है किन्तु हमारे देष में इसका प्रयोग अधिक मौकों पर किया गया है जैसे भाषा, राज्य के पुनर्गठन तथा किसी कर के लगाने के विरूद्ध आदि विषय पर। निस्सन्देह सरकार का ध्यान आकर्षित करने का यह एक प्रबल साधन है किन्तु एक सच्चे लोकतन्त्र में इन साधनों का आश्रय नहीं लिया जाना चाहिए। प्रतिनिधि मंडलों के द्वारा सरकार से वार्तालाप एवं समझौता अधिक श्रेयस्कर साधन हैं।

4. **विधान मण्डल (Legislature)** – संसद अथवा विधान मण्डल लोकमत को अभिव्यक्त करने का सर्वोत्तम स्थान है जहाँ लोगों के प्रतिनिधि लोगों की ओर से बोलते हैं। ये प्रतिनिधि सरकार को लोगों की इच्छाओं , आकाँक्षाओं तथा शिकायतों से अवगत कराने के मौके उस समय पाते हैं जब भिन्न प्रकार के बिलों होती है अथवा अनुदानों पर मत लिया जाता है। विरोधी दलों का कार्य तभी सराहनीय है यदि वे रचनात्मक सुझावों द्वारा लोगों की उचित कठिनाइयों का सरकार द्वारा निवारण करवायें।

5. **अनौपचारिक बातचीत (Informal Converstation)** – लोकमत गाड़ियों, बसों, बाजारों आदि में अनौपचारिक बातचीत द्वारा भी प्रकट होता है। ऐसे समय पर लोग अपने दिल की सच्ची बात कहते हैं। जो कुछ वे कहते हैं उसमें अतिषयोक्ति नहीं होती। अतः लोकमत की सर्वोत्तम कसौटी लोगों की सरकारी नीतियों एवं कार्यों के बारे में अनौपचारिक बातचीत है।

6. **सरकारी कर्मचारी (Government Employees)** – सरकारी कर्मचारी भी सरकार के किसी कार्य के बारे में लोकमत जानने के लिए एक अच्छी एजेन्सी का कार्य कर सकते हैं। वे विभिन्न वर्गों के अनेक लोगों के सम्पर्क में प्रतिदिन आते हैं। अतः वे इस स्थिति में होते हैं कि सरकार के प्रति लोगों के विचार जान सकें। यदि उन्हें प्रोत्साहित किया जाये तो वे लोक मत की ठीक–ठीक रिर्पोट दे सकते हैं।

7. **लोगों में स्वतन्त्रता से घूमना (Moving freely among the People)** – लार्ड ब्राइस के मतानुसार, ''किसी समुदाय की प्रवृत्तियों को जानने के लिए सभी प्रकार के लोगों के साथ स्वतन्त्रता से घूमना तथा यह जानना आवष्यक है कि वे दिन –प्रति–दिन के समाचारों से कैसे प्रभावित होते हैं।'' लोगों में स्वतन्त्रतापूर्वक घूमना तथा उनकी प्रतिक्रियाएँ जानना एक महत्तवपूर्ण तकनीक है। इससे सरकार तथा प्रषासन के बारे में लोगों के सच्चे विचार ज्ञात हो जाते हैं। इसलिए इस प्रणाली को अशोक तथा अकबर जैसे महान राजाओं ने अपनाया था। वे वेश बदल कर रात को लोगों में घूमते थे तथा उनकी प्रतिक्रियाओं तथा शिकायतों का पता लगाते थे तथा उन्हें दूर करते थे।

8. **परामर्श समिति (Advisory Committee)** – सरकार किसी विशेष कार्य के बारे में लोगों का दृष्टिकोण परामर्श समितियों से भी जान सकती है। इन समितियों में प्रभावित हितों के प्रतिनिधि होते हैं। ये समितियाँ सम्बन्धित लोागें की भावनाओं तथा हितों के बारे में सरकार को बता कर उसे किसी विशेष नीति पर चलने के लिए परामर्श देती है। ऐसी परामर्श देती है। ऐसी परामर्श समितियाँ प्रशासन के प्रत्येक स्तर–राष्ट्रीय, राज्य, स्थानीय पर विद्यमान होती है। विशेषतः इसका प्रयोग समाज सेवी विभागों जैसे शिक्षा, खाद्य तथा कृषि, वाणिज्य तथा उद्योग, सामुदायिक विकास प्रकासन तथा अन्य उद्यमों में किया जाता है।

9. **लोकमत संग्रह (Public Opinion Polls) -** अन्ततः किसी मामले पर लोकमत जानने के लिए उस मामले को लोगों का मत लेने के लिए निर्दिष्ट किया जा सकता है अथवा उनको एक प्रश्नावली (Questionnaire) जारी की जा सकती है। उनकी उत्तरों से स्पष्ट पता चल जाता है कि लोग उसके पक्ष में हैं अथवा विरुद्ध हैं। अमरीका में प्रैस तथा अन्य सम्बन्धित एजेन्सियाँ इस प्रकार लोकमत संग्रह करती है तथा उनके परिणाम प्रायः ठीक ही पाये गये है। किन्तु किसी बड़े देश में मत लेना अथवा प्रश्नावली भेजना कठिन हो जाता है। यह तरीका बहुत महंगा भी पड़ता है। इसलिए व्यहारात्मक ढंग यही हैं कि भिन्न–भिन्न आयु, लिंग, व्यवसाय, स्थान आदि से संबंधित समाज के विभिन्न वर्गों के नेताओं से मतल ले लिया जाये जो वस्तुतः जनमत को अभिव्यक्ति होगा।

2. लोगों को परामर्श देना (Advising the Pubic)

लोक सम्पर्क का दूसरा तत्त्व लोगों को परामर्श देना है कि उन्हें क्या सोचना और करना चाहिए। लोगों को यह बताना कि उन्हें क्या करना चाहिए, सरकार द्वारा प्रोपेगण्डा कहा जा सकता है। लोगों को कुछ आवश्यक बातों जैसे शिक्षा, स्वास्थ्य, व्यापार तथा वाणिज्य, कृषि, परिवार नियोजन आदि के बारे में परामर्श देना जरूरी है। भारत जैसे विकासशील देशों में लोगों का पंचवर्षीय योजनाआएँ सफल बनाने में सहयोग देने के लिए सरकार उन्हें परामर्श दे सकती है। परामर्श को झूठ तथा राजनीतिक लोग लपेट से पृथक रखना चाहिए।

3. लोगों से व्यवहार करना (Dealing with the Public)

लोक सम्पक्र का तीसरा तत्त्व सरकारी कर्मचारियों का लोगों के साथ अच्छा व्यवहार तथा सन्तोषजनक सम्बन्ध स्थापित करना है। सरकारी कर्मचारी, विशेषतया निम्न स्तर के, प्रतिदिन लोगों के सम्पर्क में आते हैं। उनका बर्ताव उनके विभाग के लिए अच्छी अथवा बुरी साख पैदा कर सकता है। लोग किसी भी एजेन्सी के अच्छे अथवा बुरे होने के बारे में निर्णय उसके कर्मचारियों के प्रति अपने अनुभव से लगाते हैं। अतः अधिकारियों को लोगों के साथ अपने सम्पर्कों का महत्त्व समझना चाहिए। यदि व नम्रता तथा सहानुभूति दिखायेंगे तो उनकी सराहना होगी तथा उनके संगठन को लोगों का अनुमोदन प्राप्त होगा। किन्तु इसके विपरीत यदि उनका बर्ताव उम्र अथवा घमण्डी होगा तो लोग उनके संगठन की निन्दा करेंगे।

लोगों के साथ अच्छा सम्पर्क स्थापित करना केवल किसी एक अधिकारी का कार्य नहीं है, बल्कि सभी कर्मचारियों का काम है जो लोगों के सम्पर्क में आते हैं तथा उन पर अपने आचार एवं गतिविधियों के बारे में प्रभाव डालते रहते है। इसलिए एल. डी. व्हाईट कहते हैं, "प्रत्येक सरकारी अधिकारी अथवा कर्मचारी लोक सम्पर्क अधिकारी है।" इसलिए प्रत्येक सरकारी अधिकारी का यही यत्न होना चाहिए कि वह इस प्रकार का व्यवहार करे कि लोग उसके संगठन के बारे में अच्छा विचार बनाये। इसके लिए प्रत्येक अधिकारी में कुछ गुण होने चाहिए, जिनका वर्णन हम नीचे करेंगे। इसके अतिरिक्त लोगों से बर्ताव करने की कुछ तकनीक होती है जिसे लोगों के सम्पर्क में आने वाले अधिकारियों को ध्यान में रखना चाहिए।

अच्छे लोक सम्पर्क अधिकारी के गुण

Qualities of a Good Public Relations Officer

सरकारी कर्मचारी लोगों के सम्पर्क में या तो व्यक्तिगत स्तर पर आते है अथवा पत्र व्यवहार से। इन दोनों सम्पर्कों में पूरा–पूरा यत्न किया जाना चाहिए कि उनके साथ नम्रता तथा सहानुभूति से पेश आया जाए। अधिकारी को यह अनुभव करना चाहिए कि नम्रता पर कुछ खर्च नहीं आता किन्तु नम्रता न बरतने से अधिकारी तथा उसकी एजेन्सी की साख पर बट्टा लगता है। कई बार विनम्रता न दिखाने से बुरा दृश्य उत्पन्न होता है जिससे लड़ाई तथा गाली–गलौच भी हो जाती है। कर्मचारियों को यह अनुभव करना चाहिए कि वे लोक सेवक हैं तथा उन्हें अफसरशाही प्रदर्शित नहीं करनी चाहिए। अफसरशाही मे प्राय रूखापन, तीखापन, पृथकता तथा घमण्ड तक भी पाया जाता है। आधुनिक लोकतन्त्र में अधिकारी को दयालु, सहानुभूतिपूर्ण एवं नम्र होना चाहिए जिसे लोग सुगमता से मिल सकें। लोगों के साथ इस प्रकार का अच्छा व्यवहार होना चाहिए कि वे अनुभव करें कि उनकी अपनी सरकार है तथा अधिकारी रूखे अथवा तीखे नहीं है बल्कि उनके हितैषी, मित्र तथा पथप्रदर्शक हैं।

जब नागरिक किसी अधिकारी को मिलने आयें ता उन्हें असुविधा नहीं होनी चाहिए। कई बार नागरिकों को दफ्तर अथवा अधिकारियों को ढूँढना कठिन हो जाता है। इस सम्बन्ध में उन्हें सहायता अथवा मार्गदर्शन नहीं मिलता जिससे उन्हें दुःख होता है। इसलिए प्रत्येक बड़े अधिकारी को एक प्रतीक्षा कक्ष की व्यवस्था करनी चाहिए जिसमें लोकांप्रेय साहित्य पड़ा हो ताकि प्रतीक्षक प्रतीक्षा का समय अच्छी तरह व्यतीत कर सके। दूसरा, प्रत्येकअथवा मार्गदर्शन कर सके। यह व्यक्ति अच्छे व्यक्तित्व वाला तथा अच्छे स्वभाव का होना चाहिए। यदि महिलाओं को इस पद पर नियुक्त किया जाये तो बेहतर होगा क्योंकि स्पष्टतया वे अधिक नम्र तथा मधुर भाषी हो सकती हैं। तीसरा, अधिकारियों को लोगों के लिए मिलने का समय निश्चित करना चाहिए। यदि किसी विवशता के कारण उस समय अधिकारी उन्हें न मिल सके तो उसे यह सूचना उन्हें देनी चाहिए तथा उनकी सुविधा के अनुसार ऐसा समय उनके लिये निकालना चाहिए जब वह उन्हें मिल सकता हो । निश्चित समय का यथासम्भव जरूर पालन किया जाना चाहिए क्योंकि लोगों का समय भी इतना ही महत्त्वपर्ण है जितना अधिकारियों का। चौथा जहाँ तक हो सके लोगों

की कठिनाइयों में उनकी सहायता करनी चाहिए। उन्हें वांछित सूचना दी जानी चाहिए, यदि नियम अनुमति न देते हों तो असमर्थता प्रकट कर देनी चाहिए।

लोग व्यक्तिगत रूप से प्रशासन के सम्पर्क में इतने नहीं आते जितने पत्रव्यवहार के माध्यम से। प्रशासन ने अपने तरीके अपनाये हुए हैं जिनको लोग 'Officialese' कह कर पुकारते हैं। लोगों की चिट्ठियों की पावती भेजनी चाहिए तथा उत्तर स्पष्ट, साधारण तथा सीधी–सादी भाषा में लिखा होना चाहिए। सार्वजनिक शिकायतों को सुनने के लिए एक अधिकारी होना चाहिए अथवा उस उद्देश्य के लिए एक शिकायत पुस्तिका होनी चाहिए अथवा शिकायत डिब्बा होना चाहिए जो स्पष्ट दिखने वाले स्थान पर रखा होना चाहिए। ऐसी शिकायतें विधिवत रूप से दर्ज की जानी चाहिए तथा उन पर कार्रवाई की जानी चाहिए। छपे हुए सरकारी फार्म स्पष्ट संक्षिप्त तथा संगत होने चाहिए। अनावश्यक सूचना नहीं माँगी जानी चाहिए। इनकी भाषा भी साधारण व्यक्ति को समझ आ जाने वाली होनी चाहिए।

उपर्युक्त बातों को अपनाने के अतिरिक्त सरकारी अधिकारियों को निजी बर्ताव में भी गौरवपूर्ण ढंग अपनाना चाहिए। उन्हें हल्की बातें करने, सार्वजनिक विवादों अथवा राजनीतिक पक्ष लेने से दूर रहना चाहिए। उन्हें राजनीति में निष्पक्ष रहना चाहिए। इसलिए उन्हें ऐसा कोई शब्द भी नहीं बोलना चाहिए जिससे लोगों पर यह प्रभाव पड़े कि वे पक्षपाती हैं अथवा एक या दूसरे राजनीतिक दल से सम्बन्धित हैं। उनका ढंग, व्यवहार तथा बर्ताव ऐसा होना चाहिए जिससे लोगों की सहानुभूति, समर्थन तथा सराहना प्राप्त की जा सके। यह हर्ष का विषय है कि हमारे देश के अधिकारी धीरे–धीरे अच्छे लोक सम्पर्क अधिकारी के गुण ग्रहण कर रहे हैं। उनको इन गुणों का महत्त्व बताने के लिए कई विभाग नम्रता–सप्ताह (Courtesy Week) मनाते हैं। अभी पुलिस विभाग अच्छा लोक सम्पर्क स्थापित नहीं कर सका जो शायद उसके द्वारा निभाए जाने वाले कर्त्तव्यों के कारण है। फिर भी वे लोगों के प्रति अपना दृष्टिकोण बदल रहे हैं तथा वह समय दूर नहीं जब वे भी लोगों की सहानुभूति प्राप्त कर सकेंगे तथा उन्हें भी लोग अपना मित्र तथा जीवन और सम्पत्ति का रक्षक समझेंगे ।

4. लोगों को सूचित करना (Informing the Public)

लोक सम्पर्क का चौथा तत्त्व सरकार के कार्यकलापों के बारे में लोगों का सूचित करना है। लोगों को सरकार की नीति तथा कार्यों के बारे में निम्नलिखित प्रचार साधनों से सूचित किया जाता है:

1. **प्रेस (Press)** –प्रेस प्रचार का सबसे महत्त्वपूर्ण साधन है। सरकार अपने कार्यकलापों के बारे में लोगों को सूचित करने के लिए प्रायः इसका प्रयोग करती है। सरकार प्रेस को प्रेस विज्ञाप्तियाँ, प्रेस नोट, अधिसूचनाएँ, प्रस्ताव आदि भेजती है। कई बार नहत्त्वपूर्ण व्यक्ति जैसे प्रधानमंत्री प्रेस कान्फ्रेंस बुलाते हैं जिसमें वे सरकारी नीति अथवा किसी स्थानीय, राष्ट्रीय अथवा अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति पर कोई स्पष्टीकरण देते हैं। सरकार द्वारा दिए गए इन प्रपत्रों को प्रेस छापता है। किन्तु प्रेस सरकार द्वारा दी गई प्रत्येक सूचना छापने के लिए बाध्य नहीं है। यह केवल वही सूचना छापता है जो खबर बन सकती है। यह बहुत आवश्यक है कि सरकार तथा प्रेस में अच्छा सम्बन्ध हो ताकि प्रेस सरकार के कार्यों के बारे में ठीक–ठीक सूचना दे तथा अनुचित ढंग से तथा झूठी आलोचना न करे।

   प्रशासन अपने प्रेस अधिकारियों के माध्यम से प्रेस के साथ सम्बन्ध रखता है। इसलिए प्रेस अधिकारियों को चाहिए कि वे सम्पादकों तथा रिपोर्टरों का विश्वास प्राप्त करें ताकि वे सरकारी नीतियों के प्रति खण्डनात्मक तथा विषैला दृष्टिकोण न अपनाएँ बल्कि सरकार की स्थिति लोगों को ठीक ढंग से स्पष्ट करें।

2. **सरकारी प्रकाशन (Government Publication)** –प्रत्येक देश में सरकार साप्ताहिक अथवा मासिक सूचना बुलेटिन निकालती है तथा सरकारी राजपत्र भी निकालती है जिसमें इसके कार्यकलापों सम्बन्धी बहुत सूचना मिलती है। इसके अतिरिक्त सरकार पुस्तकें, पुस्तिकाएँ, इश्तिहार आदि प्रकाशित करके भी अपनी नीतियों,

कार्यक्रमों तथा प्रशासकीय एजेंसियों के कार्यकलापों की सूचना लोगों को देती है। इनमें से कुछ प्रकाशन कुछ चुने हुए लोगों तथा संस्थाओं को निःशुल्क दिये जाते हैं तथा कुछ नाममात्र कीमत पर दिये जाते हैं!

भारत सरकार के विभिन्न विभाग अपने कार्य के बारे में वार्षिक रिपोर्ट भी प्रकाशित करते हैं। विभिन्न आयोग संसदीय समितियाँ आदि भी अपनी रिपोर्ट प्रकाशित करती हैं, किन्तु उनके बहुत विस्तृत होने के कारण साधारण लोगों को उन्नर विशेष लाभ नहीं होता, किन्तु उनके अंश अथवा उनका सारांश जो समाचार–पत्रों में प्रकाशित होता है, वह साधारण लोगों के लिए लाभदायक होता है।

3. **मंच (Platform)** –राजनीतिक अध्यक्ष तथा बडे–बडे सरकारी अधिकारी मंच से शैक्षणिक व्यावसायिक या सांस्कतिक सम्मेलनों में भाषण द्वारा लोगों को सूचना देते हैं।

4. **रेडियो (Radio)** –रेडियो अब लोक सम्पर्क तथा संचार का एक महत्त्वपूर्ण साधन बन गया है। समाचार पत्र तो केवल पढ़े–लिखे लोगों क पास ही जाते हैं किन्तु रेडियो तो संसार के किसी भी भाग में प्रत्येक प्रकार के व्यक्ति के पास पहुँच सकता है। सरकार लोगों को सूचना देने के लिए प्रसारण का प्रयोग करती है। इस माध्यम से सरकार न केवल समाचार तथा विचार ही लोगों तक पहुँचाती है बल्कि भिन्न प्रकार के शैक्षणिक तथा लाभदायक कार्यक्रमों का भी प्रसारण करती हैं, जैसे वार्ता, वाद–विवाद, भाषण–प्रतियोगिता, नाटक आदि जिनसे सरकार की योजनाएँ तथा नीतियाँ जनता में लोकप्रिय हो सकें।

5. **चलचित्र (Films)**–चलचित्रों को आजकल जन–शिक्षा का एक महत्वपूर्ण साधन माना जाता है। वे केवल मनोरंजन ही नहीं बल्कि शिक्षा भी देते हैं। आधुनिक सरकारें इनका काफी प्रयोग करती हैं ! दूरस्थ गाँव में भी लोक सम्पर्क विभाग द्वारा चलते फिरते वाहनों के माध्यम से इनका प्रयोग किया जाता है। सरकार का अपना स्टूडियो होता है जहाँ डाकुमारी तथा न्यूज रीलें तैयार की जाती हैं।

6. **प्रदर्शनियाँ (Exhibitions)**–प्रदर्शनियाँ भी जन संचार तथा प्रचार का कार्य करती हैं। इसलिए ये किसी विशेष प्रशासन के अंतर्गत हुई प्रगति के बारे में जनता को अवगत कराने का महत्त्वपूर्ण साधन हैं। विभिन्न प्रकार के मेले तथा औद्योगिक मेला व्यापार मेला कषि मेला हस्त उद्योग मेला निर्यात मेला आदि में भारत में स्वतंत्रता–उपरांत विभिन्न क्षेत्री हुई प्रगति को इस शानदार ढंग से दिखाया जाता है कि अनपढ़ व्यक्ति को भी देश की उपलब्धियों के बारे में ज्ञान प्राप्त हो सके।

7. **विज्ञापन (Advertisements)** –सरकार के प्रशासकीय कार्यकलापों की सूचना विज्ञापनों द्वारा भी दी जाती है। समाचार पत्रों तथा पत्रिकाओं में विज्ञापन देने के अतिरिक्त सरकार पोस्टरों, होल्डरों, कैलेण्डरों तथा इश्तिहारों आदि का भी प्रयोग करती है। सरकारी विज्ञापनों में प्रायः सरकार के व्यापारिक कार्यकलापों तथा इस द्वारा चलाये जा रहे भिन्न व्यापारों में ग्राहकों को दी जाने वाली रियायतों तथा सुविधाओं का वर्णन होता है। उदाहरणार्थ सरकार के आर्ट तथा क्राफ्ट एग्योरियम की विज्ञप्तियाँ, विभिन्न राज्य सरकारों के पर्यटन विभागों द्वारा लोगों को दी जाने वाली सुविधाओं की घोषणा, पंचवर्षीय योजनाओं, राष्ट्रीय बचत–पत्रों, परिवार नियोजन, छुआछत उन्मूलन आदि के बारे में विज्ञापन रलव स्टेशनों, बस अड्डों, डाकखानों तथा बाजारों में लगाए जाते हैं।

भारत में लोक सम्पर्क मशीनरी
Public Relations Machinery in India

लोक प्रशासन के लिए लोक सम्पर्क का अत्याधिक महत्त्व है। स्पष्टतया कोई भी लोक प्रशासन लोक सम्पर्क स्थापित किये बिना सफल नहीं हो सकता। अच्छा लोक सम्पर्क स्थापित करने के लिये सभी सभ्य सरकारों ने राष्ट्रीय तथा राज्य स्तरों पर लोक सम्पर्क एजेन्सियाँ स्थापित की हुई हैं।

इंग्लैंड में प्रथम महायुद्ध के बाद सुरक्षा मंत्रालय में पहली बार प्रेस अथवा प्रचार अधिकारी नियुक्त किये गये थे। कई और विभागों ने भी लोक सम्पर्क डिविजन स्थापित किये थे। 1939 में नियमित रूप से एक सूचना मंत्रालय

की स्थापना की गई। 1946 में केन्द्रीय सूचना कार्यालय की स्थापना की गई जिसने युद्धकालीन मन्त्रालय का स्थान लिया। इसका काम विभिन्न केन्द्रीय विभागों का प्रचार करना था। दो या तीन वर्ष बाद सूचना अधिकारियों की एक सामान्य श्रेणी आरम्भ की गई।

भारत का लोक सम्पर्क संगठन इंगलैंड जैसा ही है। प्रथम महायुद्ध के बाद एक केन्द्रीय ब्यूरो, प्रेस प्रचार तथा प्रापेगैण्डा के लिए स्थापित किया गया। इस ब्यूरो को गृह विभाग के अधीन रखा गया। 1939 में सूचना महानिदेशक की नियुक्ति की गयी जिसका कार्य युद्ध प्रचार का नियंत्रण तथा समायोजन करना था। अक्टूबर, 1941 में सूचना तथा प्रसारण विभाग बनाया गया तथा विभिन्न मन्त्रालयों के अधीन कार्य करने वाली विभिन्न प्रचार एजेन्सियों को इस विभाग के नियन्त्रणाधीन कर दिया गया। 1936 में आल इण्डिया रेडियो की स्थापना की गई। 1941 में इसे सूचना तथा प्रसारण विभाग को स्थानान्तरित कर दिया गया। 1947 में स्वतन्त्रता के बाद इस विभाग का पुनर्गठन किया गया और इसे मन्त्रालय बना दिया गया। सूचना तथा प्रसारण मन्त्रालय निम्नलिखित कार्यों के लिए उत्तरदायी हैः

(क) आल इण्डिया रेडियो सम्बन्धी सारा कार्य जिसमें समाचार सेवा, रेडियो पत्रिका, अनुसंधान तथा टेलीविजन सम्मिलित हैं।
(ख) डाकूमेंटरी, न्यूजरीलें तथा अन्य चलचित्रों का उत्पादन तथा वितरण;
(ग) संघीय सूची की प्रविष्टि 60 के अधीन विधान निर्माण अर्थात् "प्रदर्शन के लिए सिनेमाटोग्राफ फिल्मों की स्वीकृति देना"
(घ) भारत सरकार के सभी विज्ञापनों का निर्माण तथा उन्हें जारी करना तथा संघीय सरकार की ओर से वर्गीकृत विज्ञापन जारी करना।
(ङ) प्रेस के माध्यम से संघीय सरकार की नीतियों तथा कार्यकलापों की प्रस्तुति तथा उनकी व्याख्या।
(च) प्रेस सम्बन्धी समस्याओं पर सरकार को परामर्श देना।
(छ) प्रेस अधिनियम तथा समाचार पत्र अधिनियम लागू करना।
(ज) राष्ट्रीय महत्त्व मे मामलों से संबंधित लोकप्रिय इश्तिहारों, पुस्तकों तथा पत्रिकाओं का उत्पादन, विक्रय तथा वितरण करना।
(झ) प्रचार, सूचना तथा प्रसारण के क्षेत्र में अनुसंधान तथा निर्देश।

सूचना एवं प्रसारण मन्त्रालय का संगठन
Organisation of Information and Broadcasting Ministry

सूचना तथा प्रसारण मंत्रालय में एक सचिवालय, पाँच सम्बद्ध तथा सात अधीनस्थ कार्यलय है। इसके अतिरिक्त इस मंत्रालय के नियन्त्राधीन एक लोक निगम है इसकी महत्त्वपूर्ण एजेन्सियाँ निम्नलिखित हैं।

(1) **आल इण्डिया रेडियो निदेशालय (Directorate of All India Radio)**–भारत के प्रसारण स्टेशन की श्रृंखला को आल इण्डिया रेडियो कहा जाता है। इसका अध्यक्ष महानिदेशक होता है जिसकी सहायता के लिए कई उप–महानिदेशक तथा एक मुख्य इंजीनियर होता है। समाचार, संगीत, नाटक आदि जैसे नियमित कार्यक्रमों के अतिरिक्त आल इण्डिया रेडियो ग्रामीणों, स्कूलों तथा विश्वविद्यालयों के विद्यार्थियों, औद्योगिक कामगारों, आदिवासियों तथा सैनिकों के लिए विशेष कार्यक्रम भी प्रस्तुत करता है। सितम्बर, 1959 में टेलीविजन सेवा शुरू की गई। चन्दा समिति (1964) ने आल इण्डिया रेडियो के वर्तमान विभागीय प्रबन्ध के स्थान पर स्वायत्त निगम स्थापित करने की सिफारिश की है। आल इण्डिया रेडियो के मुख्य डिविजन ये हैंः (1) समाचार सेवा डिवीजन, (2) बाह्य सेवा डिविजन, (3) मानीटरिंग सेवा डिवीजन टांस्क्रिपशन तथा कार्यक्रम विनिमय से वा डिविजन, (4) इजीनियरिंग डिविजन।

(2) **प्रेस सूचना ब्यूरो (Press Information Bureau)** –यह भारत सकार का मुख्य प्रचार संगठन है। यह प्रेस के माध्यम से लोगों की सरकार के कार्यकलापों तथा नीतियों से अवगत करवा कर तथा सरकार को लोकमत की मुख्य प्रवृत्तियों की सूचना देकर सरकार तथा जनता में एक कड़ी का काम करता है। यह केन्द्रीय सरकार अथवा राज्य सरकारों के लिए वांछित सामग्री इकट्ठी करता है। इस प्रकार एकत्रित सामग्री सम्बन्धित मंत्रालयों तथा विभागों को भेज दी जाती है। यह परियोजनओं, स्कीमों अथवा किसी नयी नीति की सूचना देने के लिए विशेष लेख लिखने का कार्य भी करता है। यह मन्त्रियों तथा बड़े अधिकारियों के लिए प्रेस सम्मेलनों की भी व्यवस्था करता है ताकि वे महत्त्वपूर्ण सरकारी निर्णयों अथवा नीतियों को स्पष्ट कर सकें। ब्यूरो द्वारा प्रेस सम्पर्क सेवाओं की भी व्यवस्था की जाती है। ब्यूरो का अध्यक्ष प्रिंसिपल आफिसर होता है जिसकी सहायता के लिए सूचना अधिकारी, उपसूचना अधिकारी तथा सहायक सूचना अधिकारी होते हैं।

(3) **विज्ञापन तथा दृश्य प्रचार निदेशालय (Directorate of Advertising and Visual Publicity)** –यह प्रेस, पोस्टरों,फोल्डरों, कलैण्डरों, डायरियों, इश्तिहारों तथा सिनेमा स्लाइडों आदि के माध्यम से भारत सरकार के विज्ञापनों को तैयार करने, जारी करने तथा प्रदर्शित करने के लिए उत्तरदायी है। यह सूचना तथा प्रसारण मंत्रालय के प्रकाशनों में विज्ञापनों की बिक्री के लिए भी उत्तरदायी है।

(4) **प्रकाशन डिविजन (Publications Division)** –यह देश तथा इसकी संस्कृति के सम्बन्ध में तथा केन्द्रीय सरकार के कार्यकलापों के बारे में पर्यटन स्थानों तथा देश के विभिन्न विकास कार्यक्रमों में हुई प्रगति के बारे में कई प्रकार के प्रकाशनों की तैयारी, उत्पादन तथा वितरण के लिए उत्तरदायी है। इस डिवीजन द्वारा राष्ट्रीय बुक ट्रस्ट, केन्द्रीय समाज कल्याण बोर्ड तथा शिक्षा मंत्रालय की ओर से भी पुस्तकें प्रकाशित की जाती हैं।

यह नेशनल म्यूजियन, ललित कला अकादमी, राष्ट्रीय बुक ट्रस्ट तथा आल इण्डिया हैण्डीक्रापटस बोर्ड के लिए भी बिक्री तथा वितरण एजेन्सी के रूप में कार्य करता है। यह कई पत्रिकाएँ भी प्रकाशित करता है, जैसे 'आजकल', 'बाल भारती, कुरूक्षेत्र, भागीरथ', तथा 'पंचायती राज' । निर्देश–पुस्तक', 'इण्डिया' भी इसी डिवीजन द्वारा प्रकाशित की जाती है।

(5) **फिल्म डिविजन (Films Division)** –यह डिवीजन बम्बई में स्थित है तथा यह डाकुमेंटरी और न्यूजरील तैयार करता है।

(6) **केन्द्रीय फिल्म सेन्सर बोर्ड (Central Board of Film Censors)**–इसे 1952 में लोक प्रदर्शन के लिए फिल्मों को अनुमोदित करने के लिए स्थापित किया गया। इसका पूर्णकालिक अध्यक्ष है तथा आठ गैर–सरकारी सदस्य हैं जो अंशकालिक हैं तथा अवैतनिक कार्य करते हैं। फिल्मों के सत्यापन का आरम्भिक कार्य निरीक्षण समितियों द्वारा किया जाता है जिसमें बोर्ड का क्षेत्रीय अधिकारी तथा जनजीवन के विभिन्न क्षेत्रों से लिए गए प्रसिद्ध व्यक्ति परामर्श पेनल के रूप में कार्य करते हैं। अबोध प्रदर्शन के लिए 'यू' प्रमाण पत्र दिया जाता है तथा जो केवल वयस्कों के लिए है उन्हें 'ए' प्रमाण पत्र दिया जाता है। प्रमाण पत्र जारी करने की तिथि से दस वर्ष तक मान्य होता है।

(7) **अनुसंधान तथा संदर्भ डिविजन (Research and Reference Division)**–यह मन्त्रालय तथा इसके विभिन्न संचार साधन के यनिटों को प्रचार के लिए सामग्री सप्लाई करने के लिए उत्तरदायी है। यह प्रेस तथा फिल्म उद्योग की प्रवत्तिया का निरन्तर अध्ययन करता है। यह 'इण्डिया' निर्देश पुस्तक प्रकाशित करता है। यह महत्त्वपूर्ण व्यक्तियों की जीवनियां भी तैयार करता है। यह राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय महत्त्व के समाचारों तथा लेखों की विस्तृत अनुक्रमणी रखता है।

(8) **भारतीय लोक सम्पर्क संस्थान (Indian Institute of Public Relations)**–17 अगस्त, 1965 को लोक सम्पर्क के क्षेत्र में उच्चतर अध्ययन हेतु भारतीय लोक सम्पर्क संस्थान की स्थापना की गई। यह सूचना

तथा प्रसारण मंत्री के अधीन एक कार्यकारिणी परिषद् द्वारा संचालित किया जाता है। यह केन्द्रीय तथा राज्य सरकारों के प्रचार अधिकारियों को प्रशिक्षण देता है। यह विश्वविद्यालय, अनुसंधान संस्थाओं तथा उद्योग की सहायता से लोक सम्पर्क सम्बन्धी समस्याओं पर विचार गोष्ठियाँ व्यवस्थित करता है। यह अनुसंधान कार्य भी करता है।

राज्यों में लोक सम्पर्क सेवाएँ (Public Relations Services in the States)–राज्यों की लोक सम्पक मशीनरी केन्द्र की मशीनरी के अनुकूल ही है, यद्यपि यह इतने बड़े पैमाने पर व्यवस्थित नहीं है। बहुत सारे राज्यों में सूचना तथा लोक सम्पर्क विभाग हैं जो निदेशक, लोक सम्पर्क विभाग के अधीन हैं। विभिन्न मंत्रालयों तथा विभागों के साथ भी सम्बद्ध सूचना अधिकारी हैं। निदेशक की सहायतार्थ दो अथवा तीन उपनिदेशक होते हैं। एक उपनिदेशक सरकार के कार्यकलापों के सम्बन्ध में प्रेस को सूचना देने तथा प्रेस मे आने वाली बातों से सरकार को अवगत कराने के लिए उत्तरदायी है। दूसरा जिला स्तरों पर लोक सम्पर्क अधिकारी होता है जिसका काम जिले में सरकार के कार्यकलापों का प्रचार करना है तथा सरकार के विकास सम्बन्धी कार्यक्रमों के लिए लोगों का सहयोग प्राप्त करना है।

लोक सम्पर्क के माध्यम व साधन
Media and Means of Public Relations

लोक सम्पर्क के प्रमुखतः तीन प्रकार के माध्यम होते हैंः (1) दृश्य, (2) श्रव्य तथा (पपप) श्रव्य–दृश्य । दृश्य माध्यमों में निम्नलिखित सम्मिलित हैंः (3) विज्ञापन तथा (पप) प्रकाशन। श्रव्य एवं दृश्य माध्यमों में (4) फिल्में तथा (5) प्रदर्शनियाँ सम्मिलित हैं। रेडियो प्रसारण तथा भाषण श्रव्य माध्यम में आते हैं।

लोक सम्पर्क के साधन
Means of Public Relations

1. **विज्ञापन (Advertising)** –समाचार–पत्रों, पत्रिकाओं, स्क्रीन तथा रेडियो पर इश्तिहारों, फोल्डरों, कैलेण्डरों आदि द्वारा विज्ञापन किया जा सकता है।

2. **प्रकाशन (Publication)** –विज्ञापनों पर सरकार इसलिए खर्च करती है ताकि लोगों का ध्यान आकर्षित किया जा सके। प्रकाशनों का आधार इस बात पर है कि लोग इन्हें लाभदायक समझ कर खरीदेंगे। यद्यपि कई प्रकाशन कुछ चुने हुए व्यक्तियों तथा संस्थाओं को निःशुल्क दिये जाते हैं, तथापि अनेक को पैसे खर्च करके खरीदना पड़ता है। सरकारी प्रकाशनों में अधिकाँश तो वार्षिक रिपोर्ट होती हैं जो विभागों, समितियों तथा आयोगों आदि से सम्बन्धित होती हैं। इन रिपोर्टों को साधारण एवं सरल भाषा में लिखा जाना चाहिए। ये पेचीदगियों से मुक्त होनी चाहिएँ ताकि लोग इन्हें आसानी से समझ सकें। उनकी शैली भी सुन्दर होनी चाहिए तथा उनके प्रकाशन में अनुचित देरी नहीं होनी चाहिए।

(3) **फिल्में (Films)** –फिल्में अथवा चलचित्र लोक सूचना का महत्त्वपूर्ण साधन हैं। मनोरंजन के साथ–साथ ये दर्शकों के विचारों तथा आचार पर भी गहरा प्रभाव डालते हैं। डाकुमेंटरीज तथा न्यूजरीलें सूचना तथा प्रसारण मंत्रालय के फिल्म डिविजन द्वारा तैयार की जाती हैं तथा प्रत्येक सिनेमा हाल में प्रत्येक शो में दिखाई जाती हैं।

(4) **प्रदर्शनियाँ (Exhibitions)** –प्रचार प्रदर्शनियाँ व्यापार मेलों से भिन्न होती हैं। उनका उद्देश्य शैक्षिक होता है न कि वस्तुओं को बिक्री के लिए प्रदर्शित करना। ऐसी प्रदर्शनियाँ सभी प्रकार की दृश्य सामग्री, पेंटिंग, रेखाचित्र, चित्र आदि वस्तुओं का प्रयोग करती हैं। प्रचार प्रदर्शनियों की सामग्री के चयन तथा प्रबन्ध में बहुत कौसल की आवश्यकता है।

(5) **रेडियो कार्यक्रम (Radio Programmes)**–रेडियो तथा टेलीविजन लोक संपर्क का एक महत्त्वपूर्ण साधन बन गये है। उनका प्रयोग सरकार के कार्यकलापों के बारे में जनता को अवगत कराने के लिए किया जाता है। इनके माध्यम से लोगों को खाद के प्रयोग, कीड़ों से फसलों की रक्षा करने, स्वास्थ्य नियमों के पालन करने तथा परिवार नियोजन आदि जैसे महत्त्वपूर्ण मामलों के बारे में शिक्षित किया जाता है। यह आवश्यक है कि रेडियों से प्रसारित होने वाले कार्यक्रम रोचक, सुगम तथा ज्ञानवर्द्धक होने चाहिए।

(6) **भाषण तथा वार्ताएं (Lectures and Talks)** –लोक सम्पर्क विभाग कई विषयों पर विशेषज्ञों द्वारा वार्ताएँ प्रसारित करने की भी व्यवस्था करता है। कई भाषणों को स्लाइडों से सचित्र बनाया जाता है। ये भाषण कामगारों, किसानों तथा कर्मचारियों को सामयिक विषयों पर दिये जाते हैं।

भारत में लोक सम्पर्क
Public Relations in India

हमने इस अध्याय के एक पूर्व भाग में भारत में लोक सम्पर्क संगठन का वर्णन किया है। लोकतन्त्रात्मक ढाँचे के अनुकूल प्रचार कार्य भारत के लिए अपेक्षाकृत नया कार्य है तथा इसमें उसका अनुभव भी कम है। अतः हमारे देश में सरकार द्वारा किये जाने वाले प्रचार में कुछ सुधारों की आवश्यकता हैः प्रथम, सरकार तथा प्रेस में सम्बन्ध बहुत अच्छे नहीं हैं। प्रेस, जैसे कि हमने देखा है, प्रचार का बहुत महत्त्वपूर्ण साधन है। प्रेस आयोग (1954) ने कहा कि सरकार की यह प्रवृत्ति है कि वह प्रेस को राज्य एवं व्यक्तियों के किन्हीं विशेष चर्चित कार्यकलापों के प्रचार का साधन समझती है। संवाददाताओं को पूरी सुविधाएँ नहीं दी जाती तथा कई बार उनसे अच्छा व्यवहार भी नहीं किया जाता। यह भी कहा गया है कि प्रेस से अच्छी रिपोर्ट पाने के लिए अधिकारियों की ओर से दबाव भी डाला जाता है। सरकार के विरुद्ध समाचार देने वाले समाचार–पत्र को खतरनाक परिणामों की भी धमकी दी गई है। विरोधी प्रेस से अच्छा बर्ताव नहीं किया जाता तथा सरकारी विज्ञापन भी नहीं दिए जाते। इसके प्रसार को रोकने के लिए भी यत्न किए जाते हैं। दूसरा, विज्ञापन तथा दृश्य प्रचार निदेशालय द्वारा तैयार की गई डाकुमेंटरियाँ रोचक तथा प्रेरणादायक नहीं होती। अधिकांश में पुरानी बातें होती हैं तथा अन्य उचित ढंग से नहीं दिखाई जातीं। उदाहरणतया, परिवार नियोजन से संबंधित विज्ञापन एवं लघु चल–चित्र भारतीय सांस्कृतिक परिवेश से मेल नहीं खाते। ये उपदेशात्मक अधिक हैं तथा मानवी भावनाओं एवं सामाजिक नैतिकता को चोट पहुंचाते हैं। तीसरा, प्रकाशन डिविजन द्वारा प्रकाशित पुस्तकें देरी से निकलती हैं तथा शैली में तथा देखने में भी आकर्षक नहीं होतीं। ग्राहकों को उचित आदर नहीं दिया जाता विभागीय विक्रय केन्द्रों में अफसरशाही अधिक है, विक्रय के प्रयास कम। चौथा, जनता के प्रति सिविल सेवकों के दृष्टिकोण में नम्रता तथा मानवीयता का अभाव है। नागरिकों को अधिकारियों से मिलने की पूरी सुविधाएँ उपलब्ध नहीं हैं तथा कई बार उन्हें कठिनाई सहन करनी पड़ती है। उनकी शिकायतों पर संतोषजनक ढंग से ध्यान नहीं दिया जाता। यहाँ तक कि उनकी प्राप्ति की सूचना तक भी नहीं दी जाती। लाल फीताशाही बहुत अधिक है। सरकारी कर्मचारियों का बर्ताव रूखा है। उनमें सामान्य नम्रता का अभाव है। लोक सम्पर्क को आधुनिक लोकतन्त्र की आवश्यकताओं के अनुसार ढालने के लिए यह आवश्यक है कि लोक सम्पर्क के विभिन्न साधनों को इस प्रकार पूर्ण बनाया जाये कि लोक संपर्क के सारे उद्देश्यों की पूर्ति हो सके। लोक सम्पर्क को शिक्षा के लिए प्रयुक्त किया जाये न कि प्रापेगण्डा के लिए। इसे लोगों का सहयोग प्राप्त करना चाहिए। लोक सम्पर्क का सम्बन्ध केवल औपचारिक प्रचार मात्र से ही नहीं है बल्कि कर्मचारियों तथा नागरिकों के वैयक्तिक सम्बन्धों से है। आश्चर्य की बात है कि भारत में लोक सम्पर्क के इस पक्ष की ओर कोई ध्यान नहीं दिया गया।

महत्वपूर्ण प्रश्न

1. लोक सम्पर्क का अर्थ क्या है? इसके तत्वों का वर्णन किजिए!
2. लोक सम्पर्क के अर्थ तथा एक अच्छे लोक सम्पर्क अधिकारी के क्या गुण हैं?
3. लोक सम्पर्क का अर्थ एवं साधनों का वर्णन कीजिए!
4 भारत में लोक सम्पर्क मशीनरी का वर्णन कीजिए।

अध्याय - 4

प्रशासकीय कानून

Administrative Law

भूमिका

लोक प्रशासकों को अपनी शक्तियों के क्रियान्वयन में सदा ही विवेकाधीन सत्ता प्राप्त होती है। प्रशासकीय विवेक का अर्थ है कि लोक सेवक उपलब्ध अनेक विकल्पों में से किसी एक का चयन करें। लोक प्रशासकों को पग–पग पर विवेक का उपयोग करना होता है और उनसे यह अपेक्षा की जाती है कि वे प्रशासकीय विवेक का उपयोग मनमाने ढंग से न करें। वस्तुतः लोक प्रशासन में प्रशासकीय विवेक की सीमांए कानून द्वारा निर्धारित की जाती है जिसें कि प्रशासकीय कानून या विधि कहा जाता है।

प्रशासकीय कानून का अर्थ एवं परिभाषा

प्रशासकीय कानून से दो प्रकार के अर्थ लिये जा सकते है – व्यापक और संकुचित। अपने व्यापक अर्थ में प्रशासकीय कानून का क्षेत्र बहुत विस्तृत है। इस अर्थ में यह शासन के सभी अंगों के प्रशासन से सम्बन्ध रखने वाला कानून है। प्रशासकीय कानून अपने व्यापक अर्थ में कानूनों के वह समूह हैं जिनका सम्बन्ध सार्वजनिक प्रशासन से है। अपने संकुचित अर्थ में प्रशासकिय कानून का सम्बन्ध प्रशासनिक अधिकारियों द्वारा प्रयुक्त विवेक के कानूनी पहलुओं से होता है। लोक प्रशासन के अधिकारी अपने कर्तव्यों और उत्तरदायित्वों के निर्वहन में विकल्पों के बीच चुनाव करते है जिसके सम्बन्ध में उन्हें अपने विवेक से काम लेना पड़ता है। यही विवेकधीन शक्ति और उसका प्रयोग है जिसका अधिकार प्रशासनिक अधिकारियों को कानून द्वारा प्राप्त हुआ रहता है। लेकिन उस विवेकाधीन शक्ति का प्रयोग मनमाने ढ़ंग से नहीं किया जा सकता।

प्रशासकीय कानून प्रशासनिक अधिकारियों तथा अभिकरणों द्वारा उपयोग किये जाने वाले विवेक का निर्धारण करता है। प्रशासकीय कानून का सम्बन्ध प्रशासनिक अभिकरणों तथा अधिकारियो द्वारा प्रयोग किये जाने वाले विवेक के कानूनी पहलुओं से होता है। जेंनिग्स के अनुसार, ''प्रशासकीय कानून केवल शासन से सम्बिन्धत नियम है। इनके द्वारा प्रशासनिक कानून का अर्थ उन नियमों से है जो लोक प्रशासन के संगठन तथा कर्तव्यों का ज्ञान कराते हैं और प्रशासनिक अधिकारियों तथा नागरिको के पारस्परिक सम्बन्ध को नियमित करते है। सी. एफ. स्ट्रांग के अनुसार, ''प्रशासकी कानून उन नियमों का संग्रह है जो नागरिकों के प्रति प्रशासनिक अधिकारियों के सम्बन्धों का नियमन करते हैं तथा राज्य अधिकारियों के पद एवं दायित्वों तथा इन अधिकारों एवं दायित्वों को लागू करने की क्रियाविधियों का भी निर्धारण करते है।

प्रशासकीय कानून का क्षेत्र

फिफनर के अनुसार प्रशासकीय कानून के क्षेत्र में निम्नलिखित बातें आती हैः

1. प्रशासनिक अभिकरणों की शक्तियों तथा कर्तव्यों की व्याख्या करने वाले संविधान, संविधियां, चार्टर, अध्यादेश तथा प्रस्ताव;
2. प्रशासनिक अधिकारियों तथा अभिकरणों द्वारा निर्मित नियम तथा विनियम;
3. प्रशासनिक अधिकारियों तथा अभिकरणों द्वारा किये जाने वाले आदेश व निर्णय; तथा
4. उपरोक्त तीनों से सम्बन्धित न्यायिक निर्णय।

संयुक्त राज्य अमरीका में 1938 में लोक प्रशासन की एक समिति ने निम्नलिखित बातें सम्मिलित की है। सेविवर्ग की समस्याएं, वित्तिय प्रशासन सम्बन्धी समस्यांए, प्रशासकीय विवेक के सम्बन्ध में कानूनी स्थितियों के अध्ययन, प्रशासकीय न्यायालयों तथा प्रशासकीय कानून की समस्याएं, प्रशासकीय विनियम, प्रशासकीय जांच की समस्याएं, सरकारी ठेकों से सम्बन्धित समस्याएं, सरकार के विरूद्ध किये जाने वाले दावे, असाधारण उपचारों की समस्याएं, व्यवसायिक संघो की मान्यता तथा उनके स्तर से सम्बन्धित समस्याएं, बहु–अध्यक्षीय प्रशासकीय निकायों के नियमन की समस्याएं।

प्रशासकीय कानून का दार्शनिक आधार

राजनीतिक चिन्तन और दर्शन की दृष्टि से जिस प्रकार इंग्लैण्ड 'विधि के शासन' के लिए विख्यात है उसी प्रकार फ्रांस 'प्रशासकीय विधि' और 'न्यायालयों' की व्यवस्था के लिए प्रसिद्ध है।

फ्रांस के प्राचीन राजतन्त्र में भी सरकारी अधिकारियों के लिए अलग कानून थे और इस दृष्टि से प्रशासकीय कानून की उत्पति का स्त्रोत फ्रांस का प्राचीन राजतन्त्र कहा जा सकता है। लेकिन डायसी के अभिमत में 'इसका क्रमबद्ध विकास नेपोलियन बोनापार्ट के कौंसुलचन संविधान से प्रारम्भ होता है।' यद्यपित ब से अब तक इसमें अनेक परिवर्तन हो चुके हैं, लेकिन इसका मूल रूप अब भी वही है। इसकी उत्पति तथा विकास में दो विचारधाराओं ने योग दिया है – प्रथम, रोम का वैज्ञानिक दर्शन और द्वितीय, मॉण्टेरक्यू का शक्ति पृथक्कतरण सिद्धान्त। रोमन वैद्याानिक दर्शन की मान्यता थी कि राज्य साधय है और व्यक्ति साधन। प्रशासकीय पदाधिकारी क्योंकि राजसत्ता का प्रतिनिधित्व करते है, अतः उनका एक विशेष स्थान है और उन्हें सामान्य नागरिकों के समान स्तर पर नहीं रखा जा सकता। अतः राज्य पदाधिकारियों के लिए सामान्य न्याय पद्धति से अलग प्रशासकीय कानून और न्याय पद्धति होनी चाहिए द्वितीय मॉण्टैस्क्यू के शक्ति विभाजन सिद्धान्त का फ्रांस पर व्यापक प्रभाव पड़ा था, जिसके अनुसार विधायिका, कार्यपालिका और न्यायपालिका के कार्यक्षेत्र एक–दूसरे से पृथक् तथा स्वतन्त्र होने चाहिए। अतः इस विचारधारा के अनुसार कार्यपालिका पदाधिकारियों को न्यायपालिका से पृथक रखा गया है।

प्रशासकीय कानून के विकास के कारण

1. **औद्योगिक क्रान्ति :–** जब औद्योगिक क्रान्ति हुई तो उत्पादन के साधन और कार्य कतिपय व्यक्तियों में केन्द्रीभूत हो गये जिन्हें पूंजीपति कहा गया। पूंजीपति संख्या में कम थे, पर कार्य करने वाले अधिसंख्य श्रमिक अब उन पर निर्भर हो गये। अब वह स्थिति आ गयी, जब सरकार को श्रमजीवी समुदाय तथा साधारण जनता की रक्षा के लिए नियम और कानून बनाने पड़े। उनके हितों की रक्षा उनके कल्याण के लिए अनेक उपाय किये गये। लोककल्याण सरकार की चिन्ता का मुख्य विषय बन गया। व्यक्तिगत सम्पति अब राष्ट्र की सम्पति कहीं जाने लगी। उत्पादन के साधनों का उपयोग जन–कल्याण के लिए होने लगा। जहां–जहां आवश्यक समझा गया, वहां–वहां व्यक्तिगत हितों के स्थान पर सामूहिक हित प्रतिष्ठित किया गया।
2. **प्रशासकीय कानून का लचीलापन –** किसी विशेष स्थिति में क्या उचित है, क्या अनुचित, क्या लाभप्रद है और क्या हानिप्रद– यह निर्णय तो प्रशासनिक अधिकारी पर छोड़ दिया जाता है। चूंकि लोक प्रशासक और अधिकारी स्थानीय परिस्थितियों और तथ्यों को भली – भांति जानते हैं। वे समय और परिस्थिति के साथ कदम मिलाकर चलते हैं। अतः सामयिक विवेक का प्रशासकीय कानून में ऊंचा स्थान है। इसलिए यह लचीला होता है।
3. **विशेषज्ञों और तकनीकी ज्ञाताओं का सहयोग सम्भव –** प्रशासकीय कानून द्वारा निर्धारित स्वास्थ्य या शिक्षा या सफाई, आदि के स्तरों के लिए, विशेष जानकारी की आवश्यकता होती है। ऐसे लोग सामान्य न्यायालयों

में नहीं होते। अतः विशिष्ट विषयों के लिए विशेष अधिकारियों की नियुक्ति की जाती है। यह स्पष्ट है कि सामान्य न्यायालयों के न्यायाधिकारी कानून मात्र के ज्ञाता होते हैं।

4. **प्रयोगात्मक और व्यावहारिक विधि –** प्रशासकीय कानून नियम और अधिनियम का मार्ग अपनाता है। वह सदा व्यावहारिकता का ध्यान रखता हैं। नयी परिस्थिति और संकट में ऐसा क्या करना चाहिए कि काम चले और चलता जाये, यह प्रशासकीय कानून का उद्देश्य है।
5. **प्रशासकों का स्व–विवेक –** प्रशासनिक अधिकारियों को अपने कर्तव्यों के निर्वाह हेतु स्वविवेक से काम लेने की छूट होती है। जहां पर नियम और विधान मूक होते हैं वहां पर प्रशासनिक अधिकारी अपने निजी विवेक और सद्बुद्धि का सहारा लेकर अपनी जिम्मेदारियों को पूरा करते है तथा जनता को विभिन्न सुख–सुविधाएं उपलब्ध कराते हैं।

भारत में प्रशासकीय कानून के बढ़ते चरण

प्रशासकीय कानून 20वीं शताब्दी की विधि है। फ्रांस के अतिरिक्त अमरीका, ब्रिटेन, भारत, यूगोस्लाविया, आदि सभी देशों मे इसका उत्तरोत्तर विकास होता जा रहा है। भारत समाजवादी समाज की स्थापना के लिए कृत संकल्प हे। वह आर्थिक नियोजन, व्यक्तिगत उद्यम के नियम–नियन्त्रण तथा अधिक–से–अधिक जनकल्याण के लिए सीमित साधनों के उपयोग पर जोर देने लगा है। स्वाधीनता के बाद मानवीय क्रियाओं के नियमन हेतु अनेक अधिनियम पारित हुए है, मसलन आयात–निर्यात नियन्त्रण अधिनियम, 1947; कम्पनी अधिनियम, 1956; उद्योग (विकास एवं नियमन) अधिनियम, 1955; विदेशी विनिमय नियमन अधिनियम 1947; औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947; न्यूनतम मजदूरी अधिनियम, 1948; आदि। इन अधिनियमों से प्रशासकीय शक्तियों में अपार वृद्धि हुई है। प्रशासकीय कानून का क्षूत्र विस्तृत हुआ है तथा नियम–उपनियमों की झड़ी लगी हुई है।

प्रशासकीय कानून की आलोचना एवं मुल्यांकन

डायसी प्रशासकीय कानून की व्यवस्था के आलोचक रहे हैं। उन्होंने विचार व्यक्त किया है कि 'जहां विधि का शासन इंग्लैण्ड निवासियों की स्वतन्त्रता का रक्षक हैं, फ्रांस के सम्बन्ध में ऐसी स्थिति नहीं हैं। उनके अनुसार प्रशासकीय कानून और न्यायालय की व्यवस्था में 'यदि व्यक्तियों के अधिकार का बलिदान नहीं कर दिया जाता तो कम–से–कम उनके बलिदान की आशंका अवश्य ही बनी रहती है।' लॉर्ड हेवार्ट का विचार था कि प्रशासकीय कानून स्वेच्छाचारिता के नये साधन हैं। क्या प्रशासकीय अधिकारियों को इतनी शक्ति प्रदान करना उचित है?

संक्षेप में, प्रशासकीय विवेक का नियन्त्रण अत्यन्त महत्वपूर्ण है। प्रशसकीय विवेक व्यक्ति की स्वाधीनता तथा हितों को अत्यधिक प्रभावित कर सकता है। उस विवेक का नियमन करने के लिए प्रशासकीय कानून का होना अत्यन्त आवश्यक है।

अध्याय - 5

प्रदत्त विधिनिर्माण – अर्थ एवं महत्त्व

Deligated Legislation – Meaning and Significance

भूमिका

सामान्यतः विधि–निर्माण अथवा कानून बनाने का कार्य सरकार की व्यवस्थापिका शाखा के अधिकार क्षेत्र में आता हैं। किन्तु आधुनिक औधोगिक तथा कल्याणकारी युग में एक तो विधि–निर्माण पेचीदा व जटिल प्रक्रिया बन गई है और दूसरा व्यवस्थापिका के पास न तो इतना समय होता है और न ही आवश्यक तकनीकी ज्ञान कि वह महत्त्वपूर्ण कार्य को सफलतापूर्वक कर सके । अतः विधान मण्डल को अपनी कानून बनाने की शक्तियो का अधिकांश भाग कार्यपालिका शाखा को देने के लिए विवश होना पड़ता हैं। कार्यपलिका इस शक्ति का प्रयोग कानून बनाने के माध्यम से करती हैं । कार्यपालिका अथवा प्रशासनिक अधिकारियों द्वारा बनाये गये कानून उतने ही सम्मानजनक होते हैं जितना कि विधानमण्डल का वह कानून जिसके अन्तर्गत वे बनाये जाते हैं। कयोंकि कार्यपालिका इन कनूनों का निर्माण उस शक्ति या अधिकार के अनुसार करती है जो विधान मण्डल द्वारा उसे दी गई या सोंपी गई हैं, अतः विधान मण्डल द्वारा कार्यपालिका को दी गई कानून बनाने की इस शक्ति को प्रदत्त विधान (Delegated Legislation) की संज्ञा दी जाती है।

अर्थ एवं परिभाषा

प्रदत्त विधान से हमारा अभिप्राय विधि–निर्माण की उस प्रक्रिया से हे, जो सरकार के विधानमण्डल अंग द्वारा सम्पन्न न होकर, कार्यपालिका शाखा द्वरा सम्पन्न होती है। प्रदत्त विधान को कार्यपालिका द्वारा विधायन अथवा अधीनस्थ विधायन भी कहा जाता है। दूसरे शब्दों में प्रदत्त विधि निर्माण से तात्पर्य उन परिनियत उपकरणों, आदेशों तथा विधि–नियमों से है जो व्यवस्थापिका द्वारा विधयन के परक के रूप मे शासन के विभिन्न विभागों के द्वारा बनाये या जारी किये जाते हैं।

वास्तव में संसद द्वारा आज जितनी भी विधियां पारित की जाती हैं उनका स्वरूप अस्थिपंजर के ही समान होता है। संसदीय विधियों में नियमों की एक मोटी रूप रेखा होती है। संसद द्वारा निर्मित विधि की मोटी रूप रेखा को विभागीय आदेशों अथवा प्रशासकीय आज्ञाओं द्वारा रक्त मांस प्रदान किया जाता है। यहां यह बताना उचित होगा कि यह कार्यपालिका की मूलभूत शक्ति नही है। जिन सत्ताधारियों को यह शक्ति प्रदत की जाती है, वह इनको अपने अधीनस्थ अधिकारियों को नहीं सौपं सकते, इसका प्रयोग इन्हें स्वंय करना होता है। यदि कार्यपालिका मूल अधिनियम का अतिक्रमण करती है या उस अधिनियम के अन्तर्गत प्रदान किये गये अधिकारो को उल्लंघन करती है तो यह अवैध होता है। मन्त्रियों के अधिकारों से सम्बन्धित समिति जिसे डोनोमोर समिति भी कहा जाता है द्वारा प्रदत्त–विधान की परिभाषा इस प्रकार दी गई है, "विधि–निर्माण का अर्थ किसी अधीनस्थ अधिकारी, जैसे मन्त्री द्वारा (जिसे संसद प्रदत्त विधायी शक्ति के प्रयोग का अधिकार देती है) निर्मित कानूनों से है, या उसका अर्थ उन सहायक कानूनों से होता है जो मन्त्रियों द्वारा विभागीय विनियमों के रूप में तथा अन्य सांविधिक नियमों तथा आदेशों के रूप में पारित किये जाते हैं।"

ऐतिहासिक पृष्ठभूमिः यह मानना उचित नहीं है कि प्रदत्त विधान केवल आधुनिक युग की देन है। प्रदत्त विधायन का इतिहास तो 16वीं शताब्दी के समय से ही चला आ रहा है। डी.एल. हेविंट का कथन है, "1800 से पूर्व

विधायी शक्तियों के प्रदत्तीकरण के कोई तीस उदाहरण प्राप्त हैं।" फिर भी, प्रदत्त–विधान का विकास अपेक्षाकृत नवीन है। ब्रिटेन में प्रदत्त–विधि निर्माण की प्रक्रिया का प्रारम्भ सन् 1848 में हुआ जबकि 'स्वास्थ्य के सामान्य मण्डल' की स्थापना हुई थी। संयुक्त राज्य अमेरिका में 'राज्य आयोग' की स्थापना के साथ यह प्रक्रिया सन् 1888 के लगभग शुरू हुई। नये संविधान के निर्माण से पूर्व भारत का केन्द्रीय विधान मण्डल प्रभुसत्ता विहीन विधि निर्मात्री व्यवस्थापिका ही कहा जा सकता है। किन्तु सन् 1949 में जितेन्द्र नाथ बनाम् बिहार प्रान्त के प्रकरण में भारत के संघीय न्यायालय ने प्रदत विधान के अन्तर्गत नवगठित उच्चत्तम न्यायालय से उसका मत जानना चाहा । सर्वोच्च न्यायालय ने प्रदत्त विधान के अन्तर्गत निर्मित कानूनों को वैध करार देते हुए अपनी राय प्रकट करते हुए कहा कि संसद को व्यवस्थापन कार्य तो स्वयं करना होगा परन्तु वह गौण–विधान कार्य दूसरे को सौंप सकती है। परन्तु साथ ही इसके लिए जरूरी है कि संसद अपनी नीति को स्पष्ट कर दे और नियम–उपनियम बनाने की सीमा भी निश्चित कर दे जिससे कार्यपालिका का अधिकार क्षेत्र सुनिश्चित हो सके । ब्रिटेन में संसद प्रभुसत्ता सम्पन्न है और इसके कानून न्यायिक पुनरावलोकन के अधीन नहीं होते। अतः यह अपनी विधि–निर्माण शक्ति प्रशासनिक अभिकरणों को किसी भी ढंग से, जैसा यह उचित समझती है, प्रदान कर सकती है। यद्यपि भारत में संसद द्वारा पारित कानून न्यायिक पुनरावलोकन के अधीन हैं, किन्तु अपने विधि–निर्माण की शक्ति के दायरे में यह भी जैसा चाहे, अपनी शक्ति का हस्तान्तरण कर सकती है। इसके रास्ते में कोई संवैधानिक रूकावट नहीं है। संयुक्त राज्य अमेरिका में शक्तियों के पृथक्करण के सिद्धान्त के कारण विधि–निर्माण की शक्ति का प्रयोग केवल वहां की कांग्रेस द्वारा ही किया जा सकता है और कार्यकारिणी को अपनी सत्ता प्रदान करना संवैधानिक नहीं हो सकता। जैसा कि जॉन लॉक ने लिखा है, "विधानमण्डल विधि–निर्माण की शक्ति किसी भी दूसरे हाथों में हस्तांतरित नहीं कर सकता, क्योंकि यह जनता के द्वारा दी गई प्रदत्त शक्ति होती है। जो स्वयं प्राप्त करते हैं, वे इसे दूसरों को हस्तांतरित नहीं कर सकते। (संयुक्त राज्य अमेरिका में यही संवैधानिक सिद्धान्त माना गया है) इसलिए वहां स्थिति की परम आवश्यकताओं के कारण इसे अर्द्ध विधि–निर्माण कह कर सम्बोधित किया गया है। मुख्यतः प्रदत्त विधान की शक्ति इंग्लैंड में ताज के मंत्रियों को दी जाती है, भारत में केन्द्रीय सरकार अथवा राज्य सरकार को दी जाती है और संयुक्त राज्य अमेरिका में विभागों को अथवा महत्त्वपूर्ण अभिकरणों जैसे नियामक आयोग को दी जाती है। यह स्थानीय सरकारों, कानूनी निगमों, विश्वविद्यालयों और कुछ व्यवसायों की प्रतिनिधि संस्थाओं, जैसे वकीलों, डॉक्टरों आदि को भी दी जाती है। स्पष्ट है कि यह शक्ति केवल, बड़े उच्च जिम्मेदार सत्ताधिकारियों को ही सौंपी जाती है। अर्थात् यह कभी भी निम्नस्तर के व्यक्तिगत अधिकारियों को नहीं दी जाती। प्रदत्त विधान का वर्गीकरण–यद्यपि आकार के आधार पर प्रदत्त विधान का वर्गीकरण करना सम्भव नहीं, किन्तु इसके विषय और उद्देश्यों की दृष्टि से प्रदत्त विधान को तीन श्रेणियों में वर्गीकृत किया गया है–यथा आपातिक, पूरक अथवा अधीनस्थ तथा व्याख्यात्मक। आपातिक प्रकार का प्रदत्त विधान वहां होता है जहां विधानमण्डल मुख्य कानून को लागू करना किन्हीं तथ्यों अथवा शर्तों के पूरा होने पर आश्रित कर दे और प्रशासन को उन तथ्यों अथवा शर्तों के पूरा होने अथवा न होने का निर्णय करने की शक्ति प्रदान करे ताकि उन परिस्थितियों के अनुसार प्रशासन विधान मण्डल द्वारा पारित कानूनों को लागू कर सके। पूरक अथवा अधीनस्थ प्रदत्त विधि–निर्माण उस कानून का विस्तार करता है जिसको पहले विधान मण्डल ने केवल रूपरेखा अथवा ढांचे के रूप में पास किया हो, अर्थात् जिसमें विधान मण्डल द्वारा कुछ सामान्य सिद्धान्तों अथवा मानकों को ही स्थापित किया गया हो और जिसमें विस्तार की व्याख्या करने का कार्य नियम–निर्माण द्वारा प्रशासनिक अभिकरण पर छोड़ दिया गया हो। पूरक प्रदत्त विधान का महत्व कम नहीं होता, क्योंकि ऐसे नियम कानून के अधीन दिये गये अधिकारों, शक्ति अथवा उत्तरदायित्वों की व्याख्या कर सकते हैं अथवा उनको सीमित कर सकते हैं। व्याख्यात्मक प्रदत्त विधान जिस कानून से सम्बन्धित होता है, उस कानून की धाराओं की व्याख्या करता है, स्पष्टीकरण करता है।

प्रदत्त विधान के कारण
Reasons for the Growth of Delegated Legislation

तीव्रगामी आर्थिक, सामाजिक, एवं राजनीति परिवर्तनों के कारण आधुनिक युग में प्रदत्त विधिनिर्माण निर्विवाद अपरिहार्य हो गया है। इसकी मात्रा में निरन्तर वृद्धि हो रही है। इसके निम्नलिखित कारण हैं।

1. **संसद पर काम का दबाव**–आज का राज्य लोक कल्याणकारी राज्य है, जिसका कार्य क्षेत्र बहत बढ़ गया है। राज्य के कार्यों में वृद्धि के कारण संसद द्वारा निर्मित कानूनों की संख्या भी बढ़ रही है। निःसंदेह अब संसद के अधिवेशन लम्बे समय के लिए बुलाये जाते हैं और इसके कार्यों के घन्टों में भी भारी वृद्धि हुई है तो भी निर्मित होने वाले विधेयकों की संख्या इतनी अधिक बढ़ गई है कि संसद के लिए विधि–निर्माण का कार्य करना कठिन हो गया है। सर सिसल कार (Sir Cecil Carr) ने ठीक ही कहा है, "किसी भी व्यक्ति द्वारा यदि वर्ष भर में निर्मित प्रदत्त विधि–निर्माण की संख्या पर दृष्टि डाली जाये तो वह गम्भीरता से यह प्रस्तावित नहीं कर सकता कि अब संसद को अपनी विधायी शक्ति का प्रदत्तीकरण निरस्त कर देना चाहिए और भविष्य में सभी विधायी क्रियाएं, जो इस समय परिषद, सम्राट या विभिन्न लोक निगमों को दी गई हैं, अपनी सत्ता के प्रत्यक्ष नियन्त्रण में ले लेनी चाहिए। इसलिये यह आवश्यक हो गया है कि संसद केवल कानूनों की मोटी एवं उद्देश्यों का उल्लेख हो और कानूनों की बारीकी एवं विस्तृत रूपरेखा निर्धारित करने का कार्य कार्यपालिका को सौंप दे। उससे संसद के कीमती समय में बचत होगी और वह अपना अधिक समय नीति सम्बन्धी विषयों पर लगा सकेगी।
2. **विषय वस्तु की वैज्ञानिक व तकनीकी प्रकृति (Scientific and Technological Nature of the Subject Matter)**–वर्तमान युग वैज्ञानिक एवं तकनीकी युग है। प्रशासन के कार्य जटिल होने से कानून भी अधिक पेचीदा बन गये हैं। सामान्यतः न साधारण का एक निकाय (Body) होती है। इसके सदस्य जनसाधारण के प्रतिनिधि होते हैं। स्पष्ट है कि वे ज्ञान एवं विद्या के विभिन्न क्षेत्रों के ज्ञाता नहीं होते। अतः वैज्ञानिक एवं प्रविधिक विषयों पर विचार विमर्श करने सम्बन्धी संसद की क्षमता सीमित होती हैं। अतः संसद ऐसे विषयों को विशेषज्ञों के विचार के लिए छोड़ देती है। उदाहरण के लिए रेल–विकास की योजना रेल–विभाग में कार्यरत अभियन्त्र (Engineer) अच्छे ढंग से बना सकते हैं तथा अर्थशास्त्र का ज्ञान रेल के भाड़ों आदि को निर्धारित करने के लिए अधिक सहायक सिद्ध हो सकता है। अतः संसद को विवश होकर अपनी प्रदत्त विधान की शक्ति प्रशासनिक अधिकारियों को प्रदान करनी पड़ती है और सम्भवतः यही जनहित में है।
3. **लचीलेपन की आवश्यकता (Need for Flexibility)**–प्रशासन को स्थानीय परिस्थितियों के अनुकूल चलाने के लिए कानूनों में कुछ लचीलापन होना आवश्यक है। वैसे भी समय के परिवर्तन के साथ–साथ कानूनों में भी परिवर्तन की सदैव सत्र में नहीं होती। इसलिए वह यह कार्य शीघ्रता से नहीं कर सकती। अतः कानूनों में लचीलापन होना आवश्यक है जो प्रदत्त विधान द्वारा ही सम्भव हो सकता है। डोनोमोर समिति (Donoughmore Committee) के अनुसार, "अनेक कानून मनुष्य के जीवन पर इतना व्यापक प्रभाव डालते हैं कि उनमें लचीलापन अनिवार्य हैं। यह असम्भव है कि खसरा (डमेंसमे) या पदात्य रोग (Foot and mouth disease) जैसे रोगों को रोकने के सम्बन्ध में संसद द्वारा कोई अधिनियम बनाया जाये या यह निश्चित करे कि लोक स्वास्थ्य अधिनियम (Public Health Act) देश के विभिन्न भागों में किस प्रकार लागू करें। अतः प्रदत्त विधान में लचीलापन होता है तथा इसमें विधान मण्डल द्वारा बनाये गये कानूनों की जड़ता से, जिन्हें सरलता से अथवा शीघ्रता से संशोधित नहीं किया जा सकता, दूर रखता है।
4. **प्राकृतिक आपदाओं को दृष्टि से आवश्यक (Necessary for Natural Calamitie)**–संसद कानून बनाते समय आपातकाल जैसे युद्ध, महामारी, बाढ़, भूचाल, सूखा आदि की भविष्यवाणियां नहीं कर सकती। ऐसी परिस्थितियों में सरकार को तुरन्त कार्यवाही करनी होती है क्योंकि ऐसे मामलों में देरी करना घातक होता

है। इस बात की प्रतीक्षा करना न तो व्यवहारिक है और न ही बुद्धिमत्ता कि संसद आपात स्थिति का सामना करने के लिए आवश्यक कार्यवाही हेतु कानून का निर्माण करे। अतः संसद, इन विकट परिस्थितियों से निपटने के लिए. कानून बनाने की शक्तियां प्रशासकीय अधिकारियों को देने के लिए विवश हो जाती है ताकि स्थिति पर काबू पाया जा सके तथा प्रभावित लोगों को समय पर राहत पहुँचाई जा सके। सर सिसल कार ने ठीक ही कहा है, "महायुद्धों (Global war) के दौरान सरकार नियम अधिक मात्रा में बिना अधिकार अर्थात् (बिना लोगों की राय लिये) लागू किये जाते हैं।" इन स्थितियों से बचने के लिए तथा अनदेखे खतरों से निपटने के लिये वैधानिक शक्तियों को अधिक मात्रा में अधिकृत करना चाहिए। उपरोक्त कारणों का प्रभाव यह हुआ है कि आज प्रदत्त विधियों की संख्या निरन्तर बढ़ती ही जा रही है। इसलिए डोनेमोर समिति का कहना है, "सच्चाई तो यह है कि यदि संसद विधि–निर्माण की शक्ति के प्रदत्तीकरण के लिए तैयार नहीं होती तो वह (संसद) स्वयं आधुनिक लोक मत की आवश्यकता के अनुरूप विधान पारित करने के लिए योग्य नहीं रह सकेंगी।" यही कारण है कि प्रदत्त विधान का विकास आश्चर्यजनक हुआ। कार के अनुसार ब्रिटेन में प्रदत्त विधान की मात्रा संसद द्वारा बनाये गये कानूनों से दस गुणा से कम नहीं है। संक्षेप में हम कह सकते हैं कि प्रदत्त विधान के मुख्य कारण हैं–संसद के पास समय का अभाव तथा विषय–वस्तु की तकनीकी प्रकृति जहां विषय–वस्तु में विशेष अत्यावश्यक या बार–बार परिवर्तन की आवश्यकता पड़ती है, वहां प्रदत्त विधान की व्यवस्था उचित होती है। परन्तु जहां इसका प्रयोग इस के अतिरिक्त होता है, वहां इसका औचित्य समाप्त हो जाता है। न्यायमूर्ति महाजन के अनुसार प्रदत्त विधि–निर्माण की शक्ति प्रदान करना, आज के औद्योगिक समाज में उतना ही आवश्यक है जितना कि राज्य समाज हित के दायित्व को स्वीकार करना।

प्रदत्त व्यवस्थापन के प्रकार
(Types of Delegated Legislation)

प्रदत्त व्यवस्थापन के निम्नलिखित तीन प्रकार होते हैं:

1. **आकस्मिक प्रदत्त व्यवस्थापन (Contingent Delegated Legislation)**–आकस्मिक प्रदत्त व्यवस्थापन की आवश्यकता विशेष परिस्थितियों में होती है। विधानपालिका प्रशासकीय इकाइयों को विशेष तथ्यों और परिस्थितियों में कानून बनाने का अधिकार दे देती है। उदाहरण के लिए, भारतीय टैरिफ अधिनियम, 1935 (Indian Tariff Act), 1935 सरकार संकटकालीन स्थिति में विदेश से आने वाले माल पर संरक्षण कर लगा सकती है।
2. **पूरक प्रदत्त व्यवस्थापन (Supplementary Delegated Legislation)**–पूरक प्रदत्त व्यवस्थापन उस व्यवस्थापन को कहते हैं जिसमें सरकार संसद द्वारा पास किए गए कानून को विस्तृत करके उसे पूर्ण बनाती है। व्यवस्थापिका केवल ढाँचे के सामान्य सिद्धान्तों को पास करता है। इस ढाँचे के अन्तर्गत कार्यपालिका सामान्य सिद्धान्तों को निर्धारित करती है। विधानपालिका मुख्य कानून के साथ एक दो वाक्य जोड़ देती है जो इस प्रकार होता है–"अमुक बात सरकार द्वारा बनाए गए नियमों के अनुसार होगी। विभाग के अध्यक्ष को इसका अधिकार दिया गया है। प्रदत्त व्यवस्थापन के द्वारा बनाए गए नियम मौलिक नियमों से भी अधिक महत्वपूर्ण व प्रभावशाली होते हैं। उदाहरण के लिए स्थानीय संस्था में निर्वाचित होने के लिए उम्मीदवार की योग्यताओं व अयोग्यताओं का उल्लेख मुख्य या मौलिक कानून में होता है। परन्तु इन अयोग्यताओं के निर्णय की प्रक्रिया को पूरा करने का अधिकार प्रदत्त पूरक व्यवस्थापन के अनुसार सम्बन्धित निर्वाचन अधिकारी को दे दिया जाता है।
3. **व्याख्यात्मक प्रदत्त व्यवस्थापन (Interpretative Delegated Legislation)**–इस प्रकार की प्रदत्त व्यवस्थापन में प्रशासकीय संस्थाओं को कानून में लिखित अस्पष्ट व जटिल धाराओं की व्याख्या करने का अधिकार दिया जाता है। इस प्रकार प्रशासनिक संस्थाएं कानून का स्पष्टीकरण अपनी ओर से करती है।

प्रदत्त व्यवस्थापन के लाभ
(Merits of Delegated Legislation)

प्रदत्त व्यवस्थापन के महत्व संसदीय तथा अध्यक्षात्मक दोनों प्रकार की सरकारों में पाया जाता है। इसकी आवश्यकता प्रत्येक राजनीतिक व्यवस्था में महसूस की गई है। प्रदत्त व्यवस्थापन के लोकप्रिय होने के कई कारण हैं। इसके मुख्य लाभ निम्नलिखित है–

1. **संसद का समय बचता है (It saves the time of Parliament)**–प्रदत्त व्यवस्थापन द्वारा विधानमण्डल के अनावश्यक कार्यभार में कमी होती है, क्योंकि संसद केवल बिलों के सामान्य सिद्धान्तों को ही निर्धारित करती है। कानून को विस्तृत करने का उत्तरदायित्व प्रशासकीय निकायों पर छोड़ देती है। संसद अपना ध्यान जनहित की समस्याओं और लोकनीति की मुख्य समस्याओं पर केन्द्रित करती है, क्योंकि उसके पास इन समस्याओं के लिए समय बच जाता है।
2. **परिस्थितियों के अनुसार संशोधन सम्भव (Amendment is possible in accordance with Circumstance)** प्रदत्त व्यवस्थापन के कारण प्रशासन में लचीलापन व कुशलता आती है। बदली हुई परिस्थितियों के अनुसार प्रशासन अपने अनुभव के आधार पर संशोधन या परिवर्तन कर लेता है। इससे प्रशासकीय कार्यकुशलता व प्रवीणता बढ़ती है।
3. **विशेषज्ञों की राय का फायदा उठाया जा सकता है (The Opinion of experts is)** –कानून की वास्तविक व व्यावहारिक कठिनाइयों को नहीं समझ सकते क्योंकि उन्हें क्षेत्र का अनुभव नहीं होता। केवल प्रशासकीय अधिकारी अपने अनुभव के आधार पर विषयों के विशेषज्ञ होते हैं। उनको कानून बनाने की शक्ति देकर उनकी विशेष योग्यता व ज्ञान का फायदा उठाया जा सकता है।
4. **प्रभावित वर्गों से विचार–विमर्श सम्भव (Consultation with affected groups is Possible)** –प्रदत्त व्यवस्थापन में प्रभावित वर्गों के लोगों से विचार–विमर्श के उपरान्त ही नियम बनाए जाते हैं। अतः सम्बन्धित हितों की सलाह से बनाए गए कानूनों का पालन लोग अपनी इच्छानुसार करते हैं। इससे सरकार तथा जनता के मध्य सम्पर्क व सम्बन्ध भी बढ़ता है।
5. **अचानक उत्पन्न हुई घटनाओं से निपटा जा सकता है (Unforeseen Contingencies can be easily met)** –व्यवस्थापिका कानून बनाते समय आकस्मिक घटनाओं का पूर्वानुमान नहीं कर सकती, क्योंकि इन घटनाओं के उत्पन्न होने का डर क्षेत्र में ही होता है और क्षेत्र में प्रशासन कार्यरत रहता है। अतः कार्यपालिका को आवश्यक घटनाओं से निपटने की शक्ति प्रदान की जाती है, ताकि प्रशासनिक अधिकारी स्थिति का सामना करने के लिए उपयुक्त नियम बना सकें।
6. **भिन्न–भिन्न क्षेत्रों में नए–नए प्रयोग सम्भव है (New experiments in different fields in Possible)**–प्रदत्त व्यवस्थापन द्वारा भिन्न–भिन्न क्षेत्रों में प्रयोग सम्भव है। कल्याणकारी राज्य में सामाजिक व आर्थिक क्षेत्रों में नए–नए प्रयोगों की आवश्यकता होती है। इन प्रयोगों को सफल बनाने के लिए कार्यपालिका को शक्ति प्रदान करना अनिवार्य है। उदाहरण के लिए नगरीय विकास के लिए नगर नियोजन की एक प्रयोग के तौर पर व्यवस्था की गई है। परन्तु यह तभी सफल होगा जब इसे लागू करने की शक्ति सम्बन्धित प्रशासकीय अधिकारियों को दी जाए।
7. **आपातकाल का सामना करने में उपयोगी (Useful in Emergencies)** –संकटकाल का सामना करने के लिए प्रदत्त व्यवस्थापन अत्यन्त उपयोगी व्यवस्था है। जब तक प्रशासनिक अधिकारियों को विशेष शक्तियाँ प्रदान न की जाए, तब तक आपात्काल का सामना नहीं किया जा सकता। युद्ध, महामारी और प्राकृतिक प्रकोपों से सफलतापूर्वक निपटने के लिए कार्यपालिका को पर्याप्त शक्ति देना उचित ही नहीं, बल्कि अत्यन्त आवश्यक भी है।
8. **संसद का नियन्त्रण (Control of Parliament)** –प्रदत्त व्यवस्थापन पर संसद का अन्तिम निर्णय होता है। इसमें संसद द्वारा निर्धारित की गई सेवाओं व शर्तों का उल्लंघन नहीं किया जा सकता। वास्तव में प्रदत्त व्यवस्थापन एक अधीनस्थ व्यवस्थापन है। संसद के अतिरिक्त न्यायालयों व सवैधानिक कानूनों का भी प्रदत्त व्यवस्थापन पर नियन्त्रण होता है।

प्रदत्त व्यवस्थापन की हानियाँ
(Demerits of Delegated Legislation)

प्रदत्त व्यवस्थापन की प्रायः आलोचना की जाती है। कुछ आलोचक इसे लोकतन्त्र के लिए घातक मानते हैं। इसके मुख्य आलोचक लॉर्ड हैवार्ट (Lord Hewart) इसके विरोध में नवीन निरंकुशता' (New Despotism) नामक पुस्तक लिखी, का विचार है कि प्रदत्त व्यवस्थापन में प्रशासन काननों को क्रियान्वित करने के अतिरिक्त उनका निर्माण (Eactment) भी करता है। लॉर्ड हैवार्ट के अनुसार, "प्रशासकीय अधिनिर्णय व प्रदत्त व्यवस्थापन की वजह से विधायी, कार्यकारी व न्यायिक शक्तियाँ प्रशासकों के हाथों में केन्द्रित होती है, अतः निरंकुशता या तानाशाही पैदा करने का भय बना रहता है।" भिन्न–भिन्न विद्वान् इसकी आलोचना कटु शब्दों में करते हैं। ऐलन, नौकरशाही की जीत', डायसी, विधि के शासन को नया खतरा और सर मैरियट, 'दुष्ट प्रवृत्ति' आदि शब्दों का प्रयोग करते हुए इस व्यवस्था की निन्दा करते हैं। इस पद्धति के मुख्य दोष निम्नलिखित हैं

1. **संसद की सार्वभौमिक विधायी शक्ति का हास (Detororation of Soverign Legislative power of Parliament)**–किसी भी देश की राजनीतिक व्यवस्था में संसद का विधानमण्डल का मुख्य कार्य विधि निर्माण होता है, परन्तु प्रदत्त व्यवस्थापन में संसद कार्यपालिका को कानून निर्माण का कार्य सौंपती है। इसमें कार्यपालिका के निरंकुश बनने का डर रहता है, क्योंकि इसकी कुछ बातें न्यायालयों के अधिकार क्षेत्र से बाहर रहती है और संसद भी इस पर प्रभावशाली नियन्त्रण नहीं रख सकती। प्राचीन समय में इंग्लैण्ड में राजा की स्वेच्छाचारी शक्तियाँ संसद के पास चली गई थी, अतः राजा की निरंकुशता की समाप्ति हुई, परन्तु इस पद्धति ने नई निरंशुकता को जन्म दिया है जिसमें कार्यपालिका की मनमानी का भय रहता है।
2. **दुरूपयोग की सम्भावनाएं (Possibilities of Misuse) -** वैसे तो प्रदत्त व्यवस्थापन में विधायिका के मुख्य कानून के अन्तर्गत ही अधिनियम व नियम बनाए जाते हैं और उसे रद्द करने या संशोधित करने की शक्ति संसद के पास होती है, परन्तु समयाभाव के कारण संसद के द्वारा सभी नियमों पर नियन्त्रण रखना असम्भव हो जाता है। अतः कार्यपालिका के द्वारा मनमानी व दुरूपयोग करने की सम्भावनाएं प्रबल हो जाती हैं।
3. **असीमित शक्तिया प्रदान करना (Delegation of Unlimited Powers)**– संसद कार्यपालिका को आवश्यकता से अधिक शकितयाँ प्रदान करती है। संसद अपने–आपको केवल सामान्य सिद्धान्तों तक ही सीमित रखती है। विधानमण्डल केवल दाँचे का ही निर्माण करती है और कार्यपालिका को इस दाँचे के अन्दर असीमित कानून बनाने की शक्ति सौंप दी जाती है।
4. **संसद की टैक्स लगाने व नीती–निमार्ण की मौलिक शक्ति का हस्तांतरण (Delegation of fundamental powers of Parliament i.e. taxation and policy formulaton)**– नीति–निमार्ण संसद का मौलिक अधिकार है। कई बार संसद इस शक्ति को भी कार्यपालिका को सौंप देती है। यह असंगत व अनुचित है। इसके अतिरिक्त कर लगाने तथा कंरों में संशोधन की शक्ति भी सरकार को प्रदत्त की जाती है। यह लोकतन्त्रीय सिद्धानत ''प्रतिनिधित्व के बिना कोई कर नहीं'' (छव जंगंजपवद ूपजीवनज तमचतमेमदजंजपवद) के विपरित है। इससे कार्यपालिका को निरंकुश बनने का बल मिलता है।
5. **सार्वजनिक हितों की अनदेखी (Public Interest Ignored)–** प्रदत्त व्यवस्थापन में प्रशासनिक अधिकारी सम्बन्धित वर्गों से परामर्श करते हैं। ऐंसा करते समय वे आम जनता या सामान्य हितों का ध्यान नहीं रखते। नियम या कानून विशेष वर्ग के लिए नहीं होते बल्कि सारी जनता के लिए होती है।
6. **लचीलेपन व परिवर्तनशीलता से अकुशलता को बढ़ावा मिलता है (Flexibility and changeability increases Inefficiency)–** लचीलापन व परिवर्तनशीलता प्रद्त्त व्यवस्थापन का गुण माना जाता है, परन्तु इससे प्रशासनिक अकुशलता भी बढ़ सकती है, क्योंकि नियमों में बार–बार फेरबदल करने से प्रशासनिक अस्थिरता व अनिश्चितता फैलने का भय रहता है।
7. **न्यायालयों के अधिकार क्षेत्र से बाहर (Out of Judicial Purview)–** प्रायः प्रदत् व्यवस्थापन के अन्तर्गत बनाए गए नियम न्यायालय के अधिकार क्षेत्र से बाहर रखे जाते हैं। अधिनियमों में कई बार यह प्रावधान

कर दिया जाता है कि अमुक नियम या उप–नियम को किसी भी न्यायालय में चुनौती नहीं दी जा सकती। अतः यह एक अराजकतावादी व उग्रवादी व्यवस्था है जिसमें विधि के शासन (त्नसम वि̐ू) का अन्त हो जाता है। उदाहरण के लिए भारतीय संविधान में नौवी अनुसूची में सम्मिलित सभी संशोधन न्यायालय के अधिकार क्षेत्र से बाहर रखे गए हैं।

8. **अपर्याप्त व अप्रभावी संसदीय नियन्त्रण (Inadequate and Ineffective Parliamentary Control)**– संसद की एक समिति, जिसमें अध्यक्ष समेत 15 सदस्य होते हैं, प्रदत् व्यवस्थापन पर नियन्त्रण रखने के लिए उत्तरदायी है। इस समिति का मुख्य कार्य संसद द्वारा सौंपे गए कानून निमार्ण कार्य के अनुपालन को सुनुचित करना है। यह समिति देखती है कि क्या कार्यपालिका द्वारा बनाया गया कानून संसदीय अधिनियम के विरूध तो नहीं है। परन्तु व्यवहार में इस समिति की नियमित बैठकें नहीं होती। संसद इस समिति की सिफारिशों पर विशेष ध्यान नहीं देती। जिसके परिणाम–स्वरूप संसद प्रभावी नियन्त्रण नहीं रख सकती और कार्यपालिका निरंकुश बनने की कोशिश करती है जिससे कार्यपालिका दिन–प्रतिदिन शक्तिशाली बनती जा रही है।

9. **नियमों के उचित प्रकाशन व्याखया का अभाव (Lack of Adequate Publication and Interpretation of Rules)**– प्रदत् व्यवस्थापन के अधीन बनाए गए नियमों कार्यपालिका द्वारा उचित प्रकाशन नहीं किया जाता और न ही इनके जटिल अर्थों की सरल व्याख्या की जाती है। अतः साधारण जन मानस इन्हें समझ नहीं सकता।

10. **बीते हुए समय से प्रभावी अनुचित (Retrospective effect unfair)**– प्रायः प्रदत्त व्यवस्थापन के अन्तर्गत बनाए गए नियमों व उप–नियमों को भूतकाल से प्रभावी माना जाता है, यह अनुचित है। ब्रिटिश कानून साधनों से सम्बन्धित प्रवर समिति के अनुसार, "नियमों को गतिकालिक प्रभाव के अन्तर्गत तब तक नहीं बनाना चाहिए जब तक कि संसद द्वारा ऐसा करने की स्पष्ट रूप में व्यवस्था न की गई हो।"

उपर्युक्त दोषों के होते हुए भी प्रदत्त व्यवस्थापन की पद्धति प्रचलित है। यह एक आवश्यक बुराई है। आवश्यक इसलिए कि न तो संसद के पास समय होता है और न ही सासंद सभी वैधानिक मामलों में निपुण व योग्य होते हैं। बुराई इसलिए कि प्रदत्त व्यवस्थापन के पर्याप्त सुरक्षा कवचों के अभाव में खुले में दुरुपयोग का डर रहता है।

संक्षेप में, प्रदत्त विधि – निर्माण प्रत्यक्ष रूप से संसद के अधिनियमों से सम्बन्धित होता है, और बालक जब कुछ बड़ा हो जाता है तो उससे यह मांग की जाती है कि वह अपने माता–पिता का कुछ कार्यभार अपने ऊपर ले। अतः छोटे–छोटे मामलों एवं कार्यों को वह निपटा लेता है जबकि माता–पिता मुख्यकार्य की देखभाल व प्रबन्ध करते हैं। ऐसा होने पर संसद को छोटी–छोटी बारीकियों की परवाह किये बिना विधान के अधिक गम्भीर प्रश्नों पर विचार करने के लिए समय मिल जाएगा।

प्रदत्त विधान के खतरें (Dangers of Delegated Legislation) प्रदत्त विधि–निर्माण की कड़ी आलोचना की गई है। कुछ विचारक तो यहां तक कहते है कि इसे अपनाने का अर्थ है – प्रजातन्त्र का परित्याग। प्रदत्त विधान के सबसे प्रमुख आलोचक इंग्लैंड के महामुख्य न्यायाधिपति लार्ड हेवार्ट (Lord Heward, The Lord Chief Justice of England) थे। उन्होंने प्रदत्त विधि–निर्माण को नवीन निरंकुशता (The News Depotism) की संज्ञा दी है। उनके शब्दों में, "इस नवीन निरंकुशता का लक्ष्य है संसद को अधीन बनाना, न्यायालयों को टालना और कार्यपालिका की इच्छा या सनक को अनियन्त्रित या सर्वोपरि बनाना। इस प्रणाली के सम्भावित खतरों की ओर हमारा ध्यान आकर्षित करते हुए डोनोमोर समिति ने लिखा है, "इस बात का भय है कि सेवक कहीं स्वामी न बन जाएं।" ऐसा कहा गया है कि प्रदत्त विधि निर्माण पद्धति 'संसद पर नौकरशाही की विजय है' (The triumph of Bureaucracy over Parliament).

सर जॉन मेरियट (Sir John Mirriott) – ने प्रदत्त विधान की आलोचना करते हुए सन् 1923 में लिखा था, "मेरा यह दृढ़ विश्वास है कि ब्रिटिश संसद की कार्यपालिक को अर्द्ध न्यायिक और अर्द्ध विधायी कार्य सौंपने की प्रचलित एवं बढ़ती हुई मनोवृत्ति पूर्णतः शरारतापूर्ण है। इसको रोका जाना चाहिए। डनिंग (Dunning) के प्रसिद्ध वाक्य में यह कहा गया है कि "क्राउन की शक्ति बढ़ गई है, बढ़ रही है, और उसे घटाना चाहिए।" यदि ऐसा प्रस्ताव आज कामन सभा पारित करे या वहाँ उसे केवल पेश ही किया जाए तो हममें से बहुत चौंक पड़ेंगे। तथापि 'क्राउन' शब्द के स्थान पर यदि 'कार्यपालिका' शब्द लिख दिया जाए तो कम से कम आज उस प्रस्ताव को प्रस्तुत करने के लिए उतपना ही पर्याप्त कारण है जितना जार्ज तृतीय के शासन की तीसरी शताब्दी में था।"

निम्नलिखित तर्क देकर प्रदत्त विधि निर्माण की आलोचना की जा सकती है –

1. प्रदत्त विधान के विरुद्ध सर्वप्रथम तर्क यह दिया जाता है कि यदि प्रशासनिक अधिकारियों को विधि–निर्माण की शक्तियां दे दी जाये तो वे तानाशाह अर्थात् निरंकुश बन सकते है। दूसरे शब्दों में यदि विधि निर्माण का अधिकार कार्यपालिका को दे दिया जाए तो नागरिकों की स्वतन्त्रता खतरे में पड़ जाएगी। यह स्वाभाविक है कि प्रशासनिक अधिकारी का प्रयोग जनता की अपेक्षा प्रशासनिक सुविधा के लिए करेंगे जिसेस सार्वजनिक हित की उपेक्षा की सम्भावनाएं बढ़ जाएंगी।
2. प्रदत्त विधान से न्यायपालिका की शक्तियों व अधिकार क्षेत्र को चोट पहुँचेंगी। कई बार प्रदत्त विधि में ऐसी व्यवस्था कर दी जाती है जो नागरिकों के अधिकारों पर प्रतिबन्ध लगा देती है और उसके विरुद्ध व न्यायपालिका में नहीं जा सकते।
3. कई बार व्यवस्थापिता अधिक शक्तियां प्रदत्त कर देती हैं। यह भी हो सकता है कि विधान मण्डल अपने आप को कानूनों की केवल मोटी–मोटी रूप रेखा पारित करने तक ही सीमित रखे और सिद्धान्त एवं नीतियों के महत्त्वपूर्ण मामले कार्यपालिका को सौंप दें। उदाहरण के लिए संसद कर लगाने की शक्ति भी कार्यपालिका को सौंप देती है जो कि लोकतन्त्र के सिद्धान्त के पूर्णतया विपरीत है।
4. प्रदत्त विधान के अन्तर्गत बदलती हुई परिस्थितियों के अनुसार कानूनों में परिवर्तन किया जा सकता है। अर्थात् शासन में लचीलेपन का गुण रहता है। किन्तु इस लचीले की आड़ में यदि कानूनों में संशोधन अत्यधिक मात्रा में किया जाए या इन्हें बार–बार बदला जाये तो इससे बड़ी अनिश्चिता और अराजकता की स्थिति उत्पन्न हो सकती है। बदलते हुए कानूनों का ठीक से प्रचार व प्रसार भी नहीं किया जाता । अतः सामान्य जनता या तो कानूनों से अनिभज्ञ रहती है या इन्हें समझ नहीं पाती जिससे .....। बल्कि उसे वकीलों एवं न्यायालयों का सहारा लेना पड़ता है जो बहुत मंहगा व विलम्बकारी है। संयुक्त राज्य अमेरिका की कांउटी (County) सरकारों के क्षेत्र में ऐसा हुआ है इसलिए उन्हें विधिविहीन की संज्ञा दी गई है।
5. कभी–कभी उपकानूनों को पीछे की तिथियों से (Retrospective effect) लागू किया जाता है। यह बिल्कुल भी उचित है। संविधि संलेखों की ब्रिटिश समिति (The British Slelect Committee on Statutory Instruments) का मत है कि नियम तथा विनियम "पूर्व तिथि से लागू होने वाले नहीं होने चाहिए जब तक कि संसद द्वारा तत्सम्बन्धी स्पष्ट व्यवस्था न की जाए।"

प्रदत्त विधि–निर्माण के खतरों से बचने के सुझाव
Safeguards against the Dangers of Delegated Legislation

प्रदत्त विधि–निर्माण के चाहे कुछ भी खतरे हों, किन्तु यह एक आवश्यक बुराई है। अतः इस के खतरों को कुछ आवश्यक सुरक्षात्मक कदम उठा कर टाला जा सकता है। डोनोमोर समिति ने यह ठीक ही कहा है, "प्रदत्त विधि–निर्माण की प्रणाली कुछ उद्देश्यों के लिए कुछ सीमाओं तथा अभिरक्षणो के अन्तर्गत वैध तथा संवैधानिक दृष्टि से वांछनीय है।" प्रदत्त विधान के खतरों से बचने के लिए कुछ मुख्य सुझाव इस प्रकार है–

1. प्रदत्त विधान की शक्ति प्रशासनिक अधिकारियों को न देकर केवल मन्त्रियों को ही दी जानी चाहिए तो संसद के प्रति उत्तरदायी होते हैं।
2. संसद प्रदत्त द्वारा जो शक्ति कार्यपालिका को देती है, उसे उसकी सीमाएं स्पष्ट परिभाषित कर देनी चाहिए। यदि उन सीमाओं का उल्लघंन होता है तो नागरिकों को अपने अधिकारों की रक्षा के लिए न्यायालयों में जाने की छूट होनी चाहिए।
3. न्यायालयों के अधिकार क्षेत्र को भी सीमित नहीं करना चाहिए ताकि न्यायालयों द्वारा प्रदत्त विधान की समीक्षा की जा सके। डोनोमोर समिति ने यह कहा था कि विधि के शासन की मांग है कि सभी विनियमों को न्यायपालिका में चुनौती देने की व्यवस्था होनी चाहिए।
4. जब भी प्रदत्त विधान के अन्तर्गत नियम व अधिनियम बनाये जाये ंतो उनके साथ ही स्पष्टीकरण की टिप्पणियों लगी होनी चाहिए ताकि जनता यह जान सके कि अमुक नियम की क्या आवश्यकता है और इसे किस प्रकार लागू किया जाएगा।
5. प्रदत्त विधान के सम्बन्ध में सबसे अधिक प्रभावशाली संरक्षण संसदीय जाँच (Scrutiny) है।

जॉन ई. करसैल (John.E Kersell) का कथन उचित जान पड़त है कि "प्रदत्त विधायी शक्ति के प्रयोग के पर्यावेक्षण के लिऐ सबसे उपयुक्त संस्था सदन ही है।" इस संम्बन्ध में हरमेन फाइनर (Herman Finer) लिखते हैं "यदि प्रदत्त विधायी शक्ति या अन्य किसी प्रदत्त अधिकार का प्रयोग में लाते हैं, तो उत्तरदायी ठहराने के लिए इतना ही काफी नहीं है कि वे केवल अपनी अन्तरात्मा को देखें और अपने व्यावसायिक समूह तथा संगठित जनता के प्रतिनिधियों का ही ध्यान रखें, अपितु वास्तव में प्रजातन्त्रात्मक जनता को यदि नौकरशाही की ज्यादातियों से बचाना है तो उन्हें प्रभावशाली ढंग से अपने से बाहर किसी वरिष्ठ सत्ता के प्रति उत्तरदायी बनाना चाहिए।" भारत और ब्रिटेन में प्रत्योजित विधान पर संसद का प्रभावशाली नियन्त्रण स्थापित करने के लिए निम्नलिखित व्यवस्थाएं की जाती हैं।

1. इस प्रकार के नियमों के प्रकाशित होने पर एक निश्चित अविधि के लिए इन नियमों की एक प्रति संसद के सदनों के पटलों पर रखी जाती है।
2. उपर्युक्त नियमों में से यदि कोई नियम रद्द किये जाते है तो प्रतियां सदनों के पटल पर रखी जाती हैं।
3. कई बार यह व्यवस्था की जाती है कि संसद द्वारा निश्चित अवधि के भीतर स्वीकृति मिलने पर ही प्रात्यायोहित विधान के नियम लागू होंगे। ऐसे नियमों की प्रतियां संसद के दोनों सदनों में रखी जाती हैं।
4. संसद की समिति प्रतिनिहित विधान–समीक्षा करती है। भारत में अधीनस्थ विधि निर्माण समिति (Committee on Subordinate Legislation) की स्थापना 1953 में की गई थी।

अन्त में हम निष्कर्ष पहुँचते हैं कि आधुनिक देश प्रदत्त विधान से पूरी तरह छुटकारा नहीं पा सकते। विकासशील देशों के लिए तो इसकी अवहेलना करना और भी कठिन है। अतः प्रदत्त विधान की मुख्य समस्या यह नहीं है कि प्रदत्त विधान आवश्यक है या नहीं, बल्कि यह है ि कइस प्रक्रिया का ताल–मेल लोकतन्त्र के साथ कैसे बैठाया जाए।

महत्वपूर्ण प्रश्न

1. प्रत्यायोजित विधान का अर्थ समझाइए। इस प्रकार के विधान की आवश्यकता के क्या कारण हैं?
2. प्रत्यायोजित विधि–निर्माण क्या हैं? इसके गुण व दोषों का वर्णन कीजिए।

अध्याय - 6

प्रशासकीय – न्यायाधिकरण

Administrative Tribunal

भूमिका

यूरोप के महाद्वीपीय देशों, जैसे फ्रांस में प्रशासनिक न्यायालयों का एक सुव्यवस्थित पदसोपान होता है जहाँ राज्य परिषद् उनकी अध्यक्ष होती है जो निग्न न्यायाधिकरणों के निर्णयों के विरूद्ध अपीलें सुनती हैं। ऐंग्लो–सैक्सन देशों में और भारत तथा ऐसे ही अन्य देशों में जिनमें ऐंग्लो–सैक्सन देशों की परम्पराओं का प्रभाव पड़ा है, प्रशासनिक न्यायाधिकरणों का विकास व्यवस्थित ढंग से नहीं हुआ। जब कभी इनकी आवश्यकता अनुभव की गई, इनको स्थापित किया गया, परन्तु चाहे इनकी संख्या अब काफी बड़ी हो गई है, इनको एक स्थिर विचारशील व्यवस्था के रूप में संगठित नहीं किया गया। इनकी संरचना और कार्यविधि एक–दूसरे से अलग होती है और इनके निर्णयों के विरूद्ध अपीलें सुनने के लिए कोई एक उच्चतम न्यायाधिकरण नहीं है। इंगलैंड में प्रशासनिक न्यायाधिकरणों की काफी बड़ी संख्या है। उदाहरणतया रेलवे न्यायालय, यातायात न्यायाधिकरण, सड़क–यातायात, लाइसेंस–अधिकारी, राष्ट्रीय स्वास्थ्य सेवा, न्यायाधिकरण, स्कूल न्यायाधिकरण, राष्ट्रीय बीमा न्यायाधिकरण आदि–आदि। इनके अतिरिक्त विभिन्न मंत्रियों को न्यायिक कार्य दिए गए हैं, जैसे यातायात, स्वास्थ्य, नगर तथा ग्राम नियोजन गृह मंत्री आदि। कुछ विशेष अधिकारियों , जैसे–जिला लेखा परीक्षक, मैत्री संगठनों के रजिस्ट्रार आदि को भी न्याय–निर्णय–संबंधी शक्तियाँ दी गई हैं। भारत में न्यायाधिकरणों का विकास बिट्रेन की रूप रेखाओं पर ही हुआ है। चूँकि यहाँ सामाजिक और अर्थिक कानून इतने विकसित नहीं हुए हैं अतः इस देश में प्रशासनिक न्यायाधिकरणों की संख्या इतनी अधिक नहीं है जितनी कि ब्रिटेन में, किन्तु फिर भी पर्याप्त है। ब्रिटेन की भांति यहां भी न्याय निर्णय की शक्ति कभी कभी भिन्न–भिन्न न्यायाधिकरणों को दे दी जाती है। जैसे आयकर अपील न्यायाधिकरण, राजस्व बोर्ड, श्रम तथा औद्योगिक न्यायालय, श्रम अपील न्यायाधिकरण लोक सेवा न्यायाधिकरण आदि। कई स्थितियों में यह शक्ति विशेष सरकारी विभागों अथवा विशेषाधिकारियों को दी गई है। जिस प्रकार प्रदत्त व्यवस्थापन के अन्तर्गत प्रशासन को वैधानिक शक्तियाँ प्राप्त हो जाती हैं उसी प्रकार प्रशासकीय न्याय के अन्तर्गत प्रशासन को न्यायिक या अर्द्धन्यायिक (Quasi & Judicial) शक्तियाँ मिल जाती है। जिस प्रकार साधारण न्याय का फैसला सांधारण न्यायालयों द्वारा किया जाता है, उसी प्रकार प्रशासकीय संस्थाएँ जाँच तथा तथ्यों के आधार पर प्रशासकीय ला करती है। प्रशासकीय न्याय करने वाले संगठन को प्रशासकीय न्यायाधिकरण (Administrative Tribunal) कहते हैं। उदाहरण के लिए यदि किसी कारणवश किसी की हत्या कर दी जाती है तो हत्या के कारण का पता लगाने के लिए लाश का पोस्टमार्टम किया जाता है। चिकित्सकों का दल (Medical Board) इस बात की जाँच करता है कि हत्या कैसे हई और वह इस पर रिर्पोट तैयार करता है। अतः इस चिकित्सक दल ने न्यायिक कार्य किया और इसे प्रशासकीय न्यायाधिकरण कहा जा सकता है। ब्लैकली तथा उटमैन (Blackali and Ultamn) के अनुसार, "प्रशासकीय न्यायालय साधारण न्यायप्रणाली के बाहर के वे अधिकारी होते हैं जो उस समय कानूनों की व्याख्या करते हैं तथा उन्हें लागू करते हैं।" साधारण मुकदमें में प्रशासकीय न्यायाधिकरण द्वारा लोक प्रशासन को चुनौती दी जाती है या दूसरे स्थापित तरीकों द्वारा ऐसा किया जाता है। प्रशासनिक न्यायाधिकरणों के समक्ष निम्नलिखित प्रकार के मुकदमें आते हैं

(1) व्यक्तिगत अधिकारों और सामान्य हित पर विवाद।

(2) निजी हित और सार्वजनिक हित के मध्य संघर्ष।

(3) व्यक्ति और राज्य सरकार के मध्य झगड़े।

(4) सरकारी कर्मचारियों की बर्खास्तगी, नौकरी से हटाने और पदोन्नति का गम्भीर दंड मिलने व सेवा की अन्य शर्तो पर सरकार या नियोक्ता के विरूद्ध दावे।

भारत में प्रशासकीय अधिकरणों की संख्या में निरन्तर वृद्धि हो रही है। एक अनुमान के अनुसार भारत में प्रशासनिक न्यायालयों की संख्या 3000 के लगभग है। इनमें से प्रमुख (Income Tax Appelate Tribunal, Labour Courts] Industrial Tribunals, Central Board of Revenue and Collector of Customs and Excise आदि कुछ ऐसे सरकारी निकाय हैं जो न्यायिक कार्य करते हैं। राज्य सरकारों ने भी अपने–अपने राज्यों में प्रशासकीय न्यायाधिकरण स्थापित किए हुए हैं। ये न्यायाधिकरण भिन्न–भिन्न सेवाओं से सम्बन्धित मामलों का निपटारा करते हैं । ये नागरिकों के प्रशासन के विरूद्ध शिकायतों और कष्टों का निपटारा करते हैं! सभी प्रशासनिक न्यायाधिकरणों का विस्तृत उल्लेख करना यहाँ सम्भव नहीं है। अतः हम यहाँ केन्द्रीय प्रशासनिक अधिकरण या राज्य प्रशासनिक अधिकरणों के मुख्य पहलुओं का वर्णण करेंगे।

केन्द्रीय/राज्य प्रशासनिक न्यायाधिकरण
Central State Administrative Tribunal

सरकारी कर्मचारियों की नौकरी के मामलों को लेकर सरकार के खिलाफ कुछ शिकायतें होती हैं जिन्हें अधिकारियों को तटस्थता व निष्पक्षता के साथ सुनना चाहिए। इस कार्य के लिए प्रशासनिक न्यायाधिकरण उपयुक्त संस्था है। इन न्यायाधिकरणों को कर्मचारियों के सेवा सम्बन्धी विवादों का फैसला करने का उत्तरदायित्व सौंपा गया है। साधारण न्यायालय अपनी ज्यादा व्यस्तता व समय सम्बन्धी कारणों से कर्मचारियों को शीघ्र व सस्ता न्याय नहीं दे सकते। अतः भारत सरकार ने अनुभव किया कि एक ऐसी संस्था की स्थापना की जाए जो परेशान कर्मचारियों को शीघ्र राहत पहुँचा सके। ऐसा करने से कर्मचारियों का आत्मबल ऊँचा होगा और उनकी कार्य करने की क्षमता भी बढ़ेगी ! प्रशासनिक सुधार आयोग (1966–70) तथा जे० सी० साह समिति (1970) ने सिफारिश की कि सेवा के मामलों में कर्मचारियों के विवाद को हल करने के लिए एक स्वतन्त्र अधिकरण स्थापित किया जाना चाहिए। सन् 1980 में सर्वोच्च न्यायालय ने कहा कि लोक सेवकों को अदालती लड़ाई में समय गंवाने के लिए बाध्य नहीं किया जाना चाहिए। लोक सेवा अधिकरणों की स्थापना की जानी चाहिए और सेवा दशाओं से सम्बन्धित विवादों का हल करने के मामले में उनका फैसला अन्तिम होना चाहिए। वर्ष 1985 में संविधान में एक अनुच्छेद 323– A जोड़ा गया जिसमें केन्द्रीय तथा राज्य प्रशासनिक न्यायाधिकरणों के गठन व अधिकार––क्षेत्र की बात कही गयी है।

प्रशासनिक अधिकरणों का संगठन
Organization of Administrative Tribunals

प्रशासनिक अधिकरण अधिनियम, 1985 में एक केन्द्रीय प्रशासनिक अधिकरण और हर राज्य के लिए एक राज्य प्रशासनिक अधिकरण, जैसे हरियाणा प्रशासनिक अधिकरण आदि या दो या दो से अधिक राज्यों के लिए एक संयुक्त प्रशासनिक अधिकरण की व्यवस्था है। अतः ये अधिकरण तीन प्रकार के होते हैं

(1) केन्द्रीय प्रशासनिक न्यायाधिकरण (Central Administrative Tribunal, CAT)

(2) राज्य प्रशासनिक न्यायाधिकरण (State Administrative Tribunal, SAT)

(3) संयुक्त प्रशासनिक न्यायाधिकरण (Joint Administrative Tribunal, JAT) ये न्यायाधिकरण उच्च न्यायालयों के समकक्ष अधिकार व शक्ति रखते हैं। इनके निर्णयों के विरूद्ध सर्वोच्च न्यायालय में अपील की जा सकती है। वर्तमान काल में केन्द्रीय प्रशासनिक न्यायाधिकरण की 18 न्यायपीठे कार्य कर रही हैं। उड़ीसा, हिमाचल

प्रदेश, कर्नाटक, मध्य प्रदेश, तमिलनाडु, आन्ध्र प्रदेश. तथा महाराष्ट्र में राज्य प्रशासनिक न्यायाधिकरण गठित किए गए हैं। हर प्रशासनिक न्यायाधिकरण में एक अध्यक्ष, उपाध्यक्ष, न्यायिक सदस्य और प्रशासनिक सदस्य होते हैं। अध्यक्ष या उपाध्यक्ष की न्यूनतम योग्यता किसी उच्च न्यायालय का न्यायाधीश (वर्तमान या विगत) या भारत सरकार अथवा राज्य सरकार में सचिव के पद पर कम–से–कम दो साल का अनुभव होना चाहिए। न्यायिक सदस्य बनने के लिए उस व्यक्ति को किसी उच्च न्यायालय का न्यायाधीश या भारतीय विधि सेवा में कम से कम तीन साल का अनुभव होना चाहिए। प्रशासनिक सदस्य की निम्नतम योग्यता भारत सरकार में अपर सचिव के पद पर कम–से–कम दो साल का अनुभव या समकक्ष राज्य सरकार के अधीन किसी महत्वपूर्ण पद पर कार्य अपेक्षित है।

नियुक्ति (Appointment) : केन्द्रीय प्रशासनिक न्यायाधिकरण के अध्यक्ष, उपाध्यक्ष एवं प्रत्येक न्यायिक सदस्य की भारत के मुख्य न्यायाधीश की सलाह पर राष्ट्रपति द्वारा नियुक्ति की जाती है। राज्य प्रशासनिक न्यायाधिकरण के अध्यक्ष, उपाध्यक्ष व सदस्यों की नियुक्ति राज्यपाल द्वारा की जाती है।

प्रशासकीय न्यायाधिकरणों की विशेषता
(Features of Administrative Tribunals)

इन न्यायाधिकरणों की विशेषताएँ निम्नलिखित हैं.

(1) प्रशासकीय न्यायाधिकरण अदालतों की भान्ति श्रेणीबद्ध ढाँचे में गठित नही हैं। जिस प्रकार निम्न न्यायालयों के फैसले के विरूद्ध उच्च न्यायालय में और उच्च न्यायालय के फैसले के विरूद्ध सर्वोच्च न्यायालय में अपील की जा सकती है, परन्तु सेवा सम्बन्धी मामलों के निपटारे के लिए केवल एक प्रशासकीय न्यायाधिकरण के पास ही जा सकते हैं।

(2) प्रशासनिक न्याय के कार्य प्रायः सरकार के विभाग द्वारा सम्पन्न किए जाते हैं।

(3) प्रशासकीय न्यायाधिकरण में नियमकारी (Regulatory), प्रशासकीय (Administrative) और न्यायिक सभी कार्य केन्द्रित होते हैं।

(4) न्यायाधिकरणों का संचालन अनुभवी प्रशासकों द्वारा किया जाता है जिन्हें कोई न्यायिक प्रशिक्षण नहीं दिया जाता।

(5) निर्णय सुनाते समय न्यायाधिकरण प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों (Principles of Natural Justice) से निर्देशित होते हैं।

(6) न्यायाधिकरणों के फैसलों की उल्लंघना करने पर ये सम्बन्धित व्यक्ति या संस्था को दण्डित कर सकते हैं।

(7) प्रशासनिक न्यायाधिकरणों के फैसलों के विरूद्ध सर्वोच्च न्यायालय में अपील की जा सकती है। यह सर्वोच्च न्यायालय के विवेक पर निर्भर करता है कि वह अपील के लिए विशेष अनुमति दे या न दे।

(8) इनका अधिकार क्षेत्र केवल सेवा सम्बन्धी मामलों तक ही सीमित होता है।

प्रशासनिक न्यायधिकरणों के कार्य करने की विधि
Procedure of Work of Administrative Tribunals

प्रशासनिक न्यायाधिकरणों में आवेदन करने का एक निश्चित तरीका होता है। आवेदन एक निर्धारित प्रपत्र पर आवश्यक कागजातों व प्रमाण पत्रों के साथ कार्यालय में भेजा जाता है। आवेदन पत्र के साथ सरकार द्वारा निर्धारित सौ रूपये का शुल्क जमा करवाना होता है। इसके बाद प्रशासनिक न्यायाधिकरण आवेदनकर्ता के केस की छानबीन करके अपनी संतुष्टि प्राप्त करता है। न्यायाधिकरण यह देखता है कि आवेदनकर्ता सेवा नियमों के सभी उपाय आजमा चुका है या नहीं। यदि आवेदनकर्ता ने कहीं आवेदन कर रखी है और उसे छह महीने बीत जाने के बाद भी अपील का कोई निर्णय न मिले तो न्यायाधिकरण उसकी प्रार्थना पर विचार कर सकता है। प्रशासनिक

न्यायाधिकरण हर आवेदन पर फैसला करने के लिए लिखित प्रतिवेदन की जाँच करता है। यदि आवश्यक हो तो मौखिक तर्क भी सुने जाते हैं। आवेदन कर्ता स्वय या अपने वकील के माध्यम से अपना पक्ष प्रस्तुत कर सकता है। दोनों पक्ष अधिकरण के फैसले को मानने के लिए बाध्य हैं। यदि आदेश में कोई अवधि निर्धारित की गई है तो उस निर्णय को उसी अवधि के अन्दर मानना पड़ेगा और यदि किसी विशेष अवधि का निर्णय नहीं किया गया तो उसके फैसले का छह महीने के अन्दर पालन करना होगा। कोई भी पक्ष संविधान के अनुच्छेद 136 के अनुसार प्रशासनिक न्यायाधिकरण के निणर्य के खिलाफ सर्वोच्च न्यायालय में अपील कर सकता है।

प्रशासनिक न्यायाधिकरणों के लाभ Merits of Administrative Tribunals

साधारण न्यायालयों की अपेक्षा प्रशासकीय न्यायाधिकरणों के कुछ लाभ होते हैं। ये लाभ निम्नलिखित हैं

1. **सस्ता न्याय (Cheaper Justice)**–प्रशासकीय न्याय साधारण न्यायालयों की अपेक्षा, सस्ता है, क्योंकि इनमें न तो न्यायालयों की फीस होती है और न ही अनावश्यक औपचारिकताओं पर धन खर्च करना पड़ता है। प्रशासनिक अधिकारी जो प्रशासकीय न्याय करते हैं, का वेतन न्यायाधीशों से कम होता है।

2. **उपयुक्त न्याय (Apropriate Justice)**–प्रशासनिक न्यायाधिकरण प्रशासकीय न्याय का सबसे उपयुक्त माध्यम है। सरकारी सेवाओं में लगे कर्मचारी आश्वस्त रहते हैं कि यदि उन्हें न्याय नहीं मिला तो वें प्रशासनिक अधिकरणों के सामने अपनी समस्या रख सकते हैं।

3. **लोचशीलता (Flexibility)**–प्रशासनिक अधिकारियों के कार्य करने का ढंग लोचशील व सामञ्जस्यपूर्ण होता है। ये न्यायाधिकरण प्रक्रिया के कठोर नियमों से बँधे नहीं रहते बल्कि प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों के अनुसार कार्य करते हैं। प्राकृतिक न्याय के सिद्धात स्थिति के अनुसार बदलते रहते हैं।

4. **न्यायालयों के कार्यभार में कमी (The Burden of Courts is Reduced)**–प्रशासनिक न्यायाधिकर को राहत मिलती है. क्योंकि साधारण न्यायालयों के पास दीवानी फौजदारी और संवैधानिक मामलों की याचिकाओं की भरभार होती है। कर्मचारियों की सेवा सम्बन्धी शिकायतों के मामलों के बारे में साधारण न्यायालयों को कोई फ्रिक नहीं होती।

5. **शीघ्र निर्णय (Speedy Justice)**–प्रशासकीय न्याय शीघ्र मिलता है, क्योंकि साधारण न्यायालयों की प्रक्रिया की भांति इन न्यायाधिकरणों में गवाही हल्फिया बयान और अनावश्यक औपचारिकताओं के चक्कर में नहीं पड़ना पड़ता।

6. **अनुभव पर आधारित निर्णय (Experience based Decision)**–प्रशासकीय न्याय करने वाले अधिकारी योग्य और अनुभवी होते हैं और प्रशासकीय मामलों को अच्छी प्रकार समझ सकते हैं। साधारण न्यायालयों के न्यायाधीश सिर्फ कानूनी मामलों के विशेषज्ञ होते हैं, उन्हें प्रशासनिक मामलों का पर्याप्त ज्ञान नहीं होता।

7. **विकासशील लोकतन्त्रों के लिए उपयोगी (Useful for developing Democracies)**–विकासशील देशों में प्रशासन के समक्ष सामाजिक परिवर्तन, राष्ट्र निर्माण तथा आर्थिक उन्नति आदि प्रमुख उद्देश्य होते हैं। ऐसी परिस्थितियों में प्रशासकीय न्याय–प्रणाली काफी उपयोगी सिद्ध होती है, क्योंकि प्रशासनिक अधिकारी प्रगतिशील प्रवृत्ति के होते हैं।

8. **सरल कार्य–प्रणाली (Easy Working System)**–प्रशासकीय न्यायाधिकरणों की कार्य–प्रणाली काफी सरल और सीधी होती है। इनमें निर्णय व्यक्तिगत ज्ञान और मौखिक सबूतों के आधार पर लिये जाते हैं। गवाहों के बयान. वकीलों की जिरह तथा निर्णयों को स्थगित करने की साधारण न्यायालयों की कार्य–पद्धति का अभाव प्रशासकीय न्यायालयों में होता है। प्रशासनिक न्यायालयों में अनौपचारिक व सामान्य बोलचाल की भाषा के ढंग का प्रभुत्त होता है।

प्रशासकीय न्यायाधिकरणों की हानियाँ
Demerits of Administrative Tribunals

प्रशासकीय न्यायालयों के लाभ के साथ–साथ इनके दोष भी हैं। डायसी (Dicey) इन्हें "कानून के शासन के प्रतिकूल, लार्ड हीवार्ट (Lord Hewart) "सगठित अराजकता (Organized lawlessness) तथा के० एम० मुन्शी (KM. Munshi) "लोकतन्त्रीय ढाँचे के लिए हानिकारक" मानते हैं। प्रशासकीय न्याय–प्रणाली के मुख्य दोष निम्नांकित हैं1. कानून के शासन का उल्लंघन–(Violation of Rule of Law)–कानून का शासन, जो कि लोकतन्त्र का आधार स्तंभ है, का उल्लंघन प्रशासकीय न्याय में होता है। कानून के शासन की अवधारणा में प्रशासकीय न्याय सही नहीं बैठता, क्योंकि इसमें कानून के शासन के निम्नलिखित तीन अर्थो का अभाव होता है।

(1) कानून की सर्वोच्चता।
(2) कानून के शासन के प्रति समानता।
(3) सरकार की निरंकुशता से संरक्षण।

प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का उल्लंघन (Violation of Principles of Natural Justice)–प्रशासकीय न्यायाधिकरण प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों को तोड़ते है। ये न्यायालय नीति लागू करने से उत्पन्न विवादों को हल करने के लिए गठित किए जाते हैं। ये स्वयं भी नीति को क्रियान्वित करने में लगे रहते हैं। अतः वे अपने विवादों को ही सुलझाते हैं जबकि प्राकृतिक न्याय के सिद्धांत के अनुसार कोई भी व्यक्ति अपने मामले में स्वयं न्याय नहीं कर सकता। इसके विपरीत प्राकृतिक न्याय के निम्नलिखित सिद्धांतों का प्रशासकीय न्यायालयों में उल्लंघन होता हैं

(1) बिना दूसरे पक्ष की बातें सुने उसकी निन्दा नहीं की जानी चाहिए।

(2) सम्बन्धित पक्ष को निर्णय के कारण जानने का अधिकार है।

प्रचार का अभाव (Lack of Publicity)–प्रशासकीय न्याय की प्रक्रिया का व्यापक प्रचार नहीं होता। प्रशासकीय न्यायालयों के निर्णय और उनके कारण प्रकाशित नहीं किए जाते। इसके अतिरिक्त सामान्य जनमानस को इसकी कार्य–प्रक्रिया का ज्ञान नहीं होता। प्रशासकीय न्यायाधिकरणों की गुप्त कार्रवाई के प्रति जनता के मन में सन्देह पैदा होता है। रोबसन (Robson) के अनुसार, "प्रचार के बिना भविष्य के निर्णयों के विषय में भविष्यवाणी नहीं की जा सकती तथा गुप्तता को बनाए रखने के कारण एक तानाशाही नौकरशाही वर्ग का वातावरण बनाया जा सकता है जो साधारण जीवन के लिए आवश्यक नहीं है।

न्यायपूर्ण कार्य करने का अभाव (Lack of Judicial Act)–प्रशासकीय न्यायाधिकरणों में न्यायाधीशों की बजाय प्रशासनिक अधिकारी होते हैं जिन्हें कोई विशेष न्यायिक प्रशिक्षण भी नहीं दिया जाता। ये अधिकारी न्यायपूर्वक निर्णय नहीं कर पाते । प्रशासनिक अधिकारी जजों की भांति निष्पक्ष और स्वतन्त्र भी नहीं होते और उनके निर्णय कार्यकारिणी से प्रभावित होते हैं।

साधारण न्यायालयों के अधिकार–क्षेत्र पर हमला (Attack on Jurisdiction of Ordinary Court)–कई बार प्रशासकीय न्यायाधिकरणों के फैसलों के विरूद्ध साधारण न्यायालयों में अपील करने की स्वीकृति नहीं दी जाती। यह न्यायालयों के अधिकार क्षेत्रों को कम करने का प्रयास है जो कि भयंकर व बुरा है। संविधान की धारा 32. 136, 226, व 227 के अनुसार न्यायालयों के अधिकार क्षेत्र को कम नहीं किया जा सकता। फिर भी भारत में कई ऐसे अधिनियम हैं जो सरकार को न्यायालय के अधिकार क्षेत्र को सीमित करने का अधिकार देते हैं।

6. एक समान प्रक्रिया का अभाव (Lack of Uniform Procedure)–प्रशासकीय न्यायाधिकरणों के कार्य करने की विधि एक समान नहीं होती। ये निर्णय करते समय अपनी मर्जी के अनुसार नियम बना लेते हैं। लार्ड हैवार्ट (स्वतक भ्मूंतज) के अनुसार, "न्याय सिर्फ मिलना ही नहीं चाहिए, अपितु मिलता हुआ प्रतीत भी होना चाहिए।"

प्रशासकीय न्याय के दोषों को कम करने के सुझाव

Suggestions for Minimising Demerits of Administrative Justice

यदि निम्नलिखित सुझाव अपना लिए जाएं तो प्रशासकीय न्याय के दोष कम हो सकते है

(1) प्रशासकीय विवाद का फैसला करने के लिए ऐसे व्यक्ति को न्यायाधीश बनाना चाहिए जिसका उस विवाद से प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष किसी भी प्रकार का सम्बन्ध न हो।

(2) प्रशासकीय न्यायाधिकरण में एक व्यक्ति की अपेक्षा बोर्ड या समिति का गठन किया जाना चाहिए।

(3) प्रशासकीय न्यायाधिकरण के सदस्यों व अध्यक्ष की नियुक्ति करने के लिए एक न्यायाधिकरण परिषद की स्थापना की जानी चाहिए।

(4) सभी गवाहों व दस्तावेजो को प्रकट करना चाहिए।

(5) सभी पक्षों को निर्णयों के आधारों का ज्ञान होना चाहिए।

(6) सम्बन्धित व्यक्ति को स्वयं या वकील के माध्यम से अपने विचार प्रकट करने का अधिकार होना चाहिए।

(7) प्रशासकीय न्यायालयों के निर्णयों के विरूद्व अपील करने का अधिकार होना चाहिए।

(8) न्यायिक आचार संहिता को अपनाना चाहिए।

(9) निर्णयों के पर्याप्त कारण दिए जाने चाहिए ।

(10) सर्वोच्च न्यायालय व उच्च न्यायालयों के अधिकार–क्षेत्र को सीमित नहीं करना चाहिए।

(11) प्रशासकीय न्यायाधिकरणों की संख्या अंधाधुंध नहीं बढानी चाहिए।

संक्षेप में हम कह सकते हैं कि प्रशासकीय न्यायाधिकरणों में न्यायिक तत्त्वों (Judicial Element) को अपनाने की आवश्यकता है।

महत्वपूर्ण प्रश्न

1. प्रशासकीय न्यायाधिकरण की आवश्यकताएँ या रचना का वर्णन कीजिए।

2. प्रशासकीय न्यायाधिकरण की विशेषताओं लाभ तथा हानियों पर प्रकाश डालिए।

अध्याय - 7

प्रशासनिक संगठन के रूप

Forms of Administrative Organisation

विभागीय संगठन

Departmental Organisation

''केवल विभागीय व्यवस्था के कारण ही अधिकार क्षेत्र के विवाद कार्यो का प्रतिपादन, संगठन तथा कार्यों के दोहराव से बचा जा सकता है।''

–विलोवी

विभाग का शाब्दिक अर्थ किसी बड़े संगठन की इकाई से है। यदाकदा इस शब्द का प्रयोग प्रशासकीय संगठन के अलावा अन्य क्षेत्रों में किया जाता है। विश्वविद्यालयों और महाविद्यालयों में अध्यापन कार्य को विभागों में बाँट लिया जाता है। यथा राजनीति विज्ञान विभाग अर्थशास्त्र विभाग समाज शास्त्र विभाग आदि। प्रशासन की शब्दावली में विभाग का एक विशेष अर्थ होता है। कार्यपालिका अध्यक्ष के पास रहने वाले समस्त शासकीय कार्यों को अनेक खण्डों में विभाजित कर लिया जाता है। इसी प्रत्येक खण्ड को विभाग कहते हैं।

मुख्य कार्यपालिका के पास इतने अधिक उत्तरदायित्व होते हैं कि वह अकेले समस्त कार्यों को सम्पन्न नहीं कर सकता। विभाग, राज्य के लक्ष्य और कार्यपालिका के दायित्वों को पूर्ण करने वाला महत्वपूर्ण निकाय है। डिमॉक के शब्दों में– ''प्रशासन में श्रम विभाजन की आवश्यकता होना ही विभागीय पद्धति के जन्म का स्वाभाविक कारण है और जब किसी उद्यम के कार्यों की संख्या में अत्यधिक वृद्धि हो जाती है जैसे आधुनिक सरकार विशेषतः संघीय सरकार के मामले में हो रहा है, तब यह परिस्थिति उग्र रूप धारण कर लेती है।''

विभाग के दो लक्षण होते हैं–

(1) विभाग का स्थान प्रशासकीय क्रम में प्रथम होता है। यह मुख्य कार्यपालिका के तत्काल आधीन रहकर कार्य करता है।

(2) विभाग मुख्य कार्यपालिका के अधीन तथा उसके प्रति उत्तरदायी होता है।

विभागों के विभिन्न प्रकार

Kinds of Departments

विभागीय संगठन के अनेक प्रकार है इनका आधार आकार, बनावट, कार्य की प्रकृति तथा आन्तरिक सम्बन्धों को बनाया जा सकता है

(1) **आकार के आधार पर** – कुछ विभागों का आकार बहुत बड़ा होता है और कुछ अत्यधिक छोटे आकार के होते हैं। सेना, रेल और डाक तार विभाग बड़े आकार के विभाग हैं जबकि राज्यों का रजिस्ट्री विभाग छोटे विभाग का उदाहरण है।

(2) **स्वरूप के आधार पर** – स्वरूप की दृष्टि से विभाग को एकात्मक और संघात्मक दो भागों में बाँटा जा सकता है। एकात्मक विभाग में निर्णय करने का दायित्व केन्द्र के पास होता है। प्रतिरक्षा और वित्त–मंत्रालय

इसी श्रेणी में आते हैं। संघात्मक विभाग में निर्णय करने का आंशिक अधिकार क्षेत्रीय कार्यालय को प्रदान किया जाता है। सामुदायिक विकास से सम्बंद्ध कार्यालय को इस श्रेणी में रखा जा सकता है।

(3) **कार्य के आधार पर** – कुछ विभागों की रचना एक ही प्रधान प्रयोजन को पूरा करने के लिए की जाती है। इन्हें एक कार्यकारी विभाग कहा जाता है। उदाहरणार्थ प्रतिरक्षा, शिक्षा, स्वास्थ्य आदि। इसके विपरीत कुछ विभाग ऐसे होते है जिनके कार्य विविध प्रकार के होते हैं। ऐसे विभागों को बहुकार्यकारी विभाग कहते हैं। सामान्य प्रशासन विभाग इसका उदाहरण है। इसका कार्य समस्त विभागों के बीच समन्वय स्थापित करना है।

(4) **भौगोलिक आधार पर** – कुछ विभागों का मुख्य कार्य कार्यालय तक ही सीमित रहता है यथा वित्त, प्रतिरक्षा. स्थानीय स्वशासन आदि इसके विपरीत अन्य विभागों का कार्य समूचे देश में बंटा रहता है तथा क्षेत्रीय स्तर के कार्यालयों द्वारा सम्पन्न किया जाता है। डाक एवं तार विभाग इसके उदाहरण हैं।

विभागीय संगठन के आधार
Bases of Departmental Organisation

वर्तमान में विभागीय संगठन के चार आधार स्वीकार किये जाते हैं। लूथर गुलिक के अनुसार विभाग के ये चार आधार अंग्रेजी के प्रथम अक्षर 'P' से प्रारम्भ होते हैं – Purpose, Process, Persons, तथा Place। इसे **गुलिक के 4 पी** सिद्धांत से जाना जाता है।

विभागीय अध्यक्ष (ब्यूरो तथा बोर्ड व्यवस्था) The Head of the Department (Bureau and Board System)

विभागीय संगठन में विभागाध्यक्ष को सर्वोच्च सत्ता और अधिकार प्राप्त होते हैं। विभागाध्यक्ष की स्थिति वही है जो कि शरीर में मस्तिष्क की है। जिस प्रकार समस्त शारीरिक क्रियाओं का निर्देशन और नियंत्रण मस्तिष्क करता है ठीक उसी प्रकार विभाग द्वारा सम्पन्न किये जाने वाले कार्यों का निर्देशन एवं नियंत्रण विभागाध्यक्ष द्वारा किया जाता है। विभागीय अध्यक्ष की योग्यता पर ही समस्त शासन व्यवस्था की कुशलता निर्भर है। प्रबन्ध की दृष्टि से विभागीय अध्यक्ष की व्यवस्था दो रूपों में की जाती हैं

1. ब्यूरो पद्धति अथवा एक अध्यक्षीय व्यवस्था (Bureau Type or Single Man Department)
2. मण्डलीय पद्धति अथवा बहु – सदस्यीय व्यवस्था (Board Type or Plural Type Department)

1. **ब्यूरो पद्धति अथवा एक अध्यक्षीय व्यवस्था** – यदि कोई एक व्यक्ति विभाग का अध्यक्ष होता है तब वह ब्यूरो पद्धति अध्यक्ष कहलाती है। इसमें विभाग के निर्देशन तथा निरीक्षण का दायित्व एक व्यक्ति के हाथों में होता है। इंग्लैंड तथा भारत में ब्यूरो पद्धति का पालन किया जाता है। उदाहरणार्थ प्रतिरक्षा मन्त्री, प्रतिरक्षा विभाग तथा शिक्षा मन्त्री, शिक्षा विभाग का अध्यक्ष होता है। डा० एल डी व्हाइट के अनुसार ब्यूरो व्यवस्था विभाग की मुख्य आंतरिक इकाई है। इसका अध्यक्ष संगठन के आदेशानुसार उसके निर्देशन पर कार्य करने के लिये उत्तरदायी होता है।''

ब्यूरो पद्धति के गुण – ब्यूरो पद्धति के गुण निम्नलिखित हैं

(1) **शीघ्र निर्णय** – एक सदस्यीय अध्यक्षीय प्रणाली के अन्तर्गत कार्य करने का उत्तरदायित्व एक ही व्यक्ति पर होता है। एक व्यक्ति, व्यक्ति समुदाय की अपेक्षा शीघ्र निर्णय ले सकता है।

(2) **उद्देश्य की एकरूपता** – इस प्रणाली में उद्देश्य की एकता बनी रहती है। इसका लाभ यह होता है कि संगठन में लगे सभी कर्मचारी में लक्ष्य की स्पष्टता और एकरूपता के कारण अपने विभाग के कार्य की प्रकृति को समझते हैं और तद्नरूप आचरण करते हैं।

(3) **कुशल नियन्त्रण** – इस व्यवस्था में आदेश एक ही व्यक्ति द्वारा प्रसारित किये जाते हैं। फलस्वरूप अधीनस्थ कर्मचारियों को यह ज्ञात होता है कि उन्हें किस व्यक्ति के आदेशों का पालन करना है। प्रभावशाली नियंत्रण के परिणामस्वरूव कर्मचारियों में कर्तव्यों के प्रति उदासीनता नहीं आ पाती। अतः प्रशासकीय संगठन भ्रष्टाचार तथा अकर्मण्यता आदि का शिकार नहीं हो पाता।

(4) **दृढ़ अनुशासन** – एक ही व्यक्ति के हाथों में सत्ता निहीत होने के कारण वह अपने विभाग पर दृढ़ अनुशासन स्थापित कर सकता है।

(5) **उत्तरदायित्व का निर्धारण** – इस प्रणाली में विभाग की असफलता के लिये उत्तरदायित्व निश्चित करने में कठिनाई नहीं आती। समस्त सफलताओं का श्रेय यदि विभागाध्यक्ष को होता है तो असफलताओं के लिये भी वही उत्तरदायी होता है।

6. **मितव्ययता** – यह व्यवस्था इस दृष्टि से मितव्ययी होती है कि एक ही व्यक्ति के अनुपालन (Maintenance) पर खर्च किया जाता है।

7. **पूर्ण योग्यता से कार्य** – जब विभाग के कार्य संचालन के लिये एक ही व्यक्ति उत्तरदायी होता है तो वह अपना कार्य सम्पूर्ण उत्साह, योग्यता, लगन एवं ईमानदारी के साथ सम्पन्न करता है।

(8) **स्थायी नीति एवं कुशल निर्देशन** – यदि विभाग का गठन पुराना है और उसके उद्देश्य निशिचित है तब विभाग का अध्यक्ष एक व्याक्त श्रेष्ठ होता है। नीति के स्थायित्व के कारण योग्य एवं कर्तव्यनिष्ठ विभागाध्यक्ष कुशल निर्देशन कर सकता है। कुशल निर्देशन से संगठन की कार्यक्षमता में वृद्धि होता है।

हेमिल्टन के अनुसार – ''संगठन के प्रत्येक विभाग में एक सदस्यीय अध्यक्ष की व्यवस्था को अधिक मान्यता प्रदान की गई है। इससे हमें अधिक ज्ञान, अधिक क्रियाएँ तथा अधिक उत्तरदायित्व की सम्भावनाएँ प्राप्त होगी और साथ ही प्रशासन में अधिक लगन तथा सतर्कता स्थापित होगी।

ब्यूरो पद्धति के दोष – ब्यूरो पद्धति के दोष निम्नलिखित हैं

(1) **तानाशाहा प्रवृत्ति का विकास** – यह एक निरपेक्ष सत्य है कि यदि किसी व्यक्ति को सम्पूर्ण शक्तियाँ प्रदान कर दी जाएँ तो वह निरंकुश आचरण प्रांरम्भ कर देता है। ब्यूरो पद्धति में आदेश देने नियन्त्रण और निर्देश देने के समस्त अधिकार एक ही व्यक्ति के पास होते हैं। अतः उसमें तानाशाही प्रवृति का विकास सहज ही हो जाता है।

(2) **पक्षपात पूर्ण निर्णय** – समस्त प्रशासकीय अधिकार और सत्ता जब एक व्यक्ति में निहित होते हैं तब चापलूस व्यक्ति उसे प्रभावित करने में सफल हो जाते हैं। इस व्यवस्था के कारण समस्त प्रशासन का संचालन पक्षपात पूर्ण तरीके से होने लगता है।

(3) **दोषपूर्ण निर्णय** – इस व्यवस्था में जहाँ शीघ्र निर्णय के गुण हैं वहीं इसके कारण एक दोष भी स्वाभाविक रूप से उत्पन्न हो जाता है। अज्ञानता और शक्ति के मद में जल्दबाजी में जो निर्णय लिए जाते हैं वे विवेकहीन होते हैं।

(4) **भ्रष्टाचार की सम्भावनाएँ** – लार्ड एक्टन का विचार है कि ''शक्ति भ्रष्ट करती है और पूर्ण शक्ति पूर्ण रूप से भ्रष्ट करती है।'' एक व्यक्ति के पक्षपातपूर्ण व्यवहार के कारण समस्त विभाग में भ्रष्टाचार व्याप्त हो जाता है।

(5) **जनसहयोग का अभाव** – ब्यूरो व्यवस्था में भ्रष्टाचार जिस सीमा तक व्याप्त हो जाता है उसके कारण जनता में उदासीनता की भावना उत्पन्न हो जाती है।

2. **मण्डलीय पद्धति अथवा बहुसदस्यीय व्यवस्था** – यदि विभाग के निर्देशन तथा नियन्त्रण का दायित्व कई व्यक्तियों में बाँट दिया जाता है तो उस मण्डलीय अथवा बहुसदस्यीय व्यवस्था का संगठन कहा जाता है। भारत का केन्द्रीय राजस्व बोर्ड तथा रेलवे बोर्ड इसके सर्वोत्तम उदाहरण है। रेलवे का प्रशासन और उसका प्रबंध एवं सचालन रेल मन्त्री के नीचे रेलवे बोर्ड द्वारा किया जाता है। यही स्थिति केन्द्रीय वित्त मंत्रालय में सीमा शुल्क, निर्यात कर, आयकर के विभागों को नियंत्रित करने वाले केन्द्रीय राजस्व मण्डल की है।

मण्डलीय अथवा आयोग प्रणाली के गुण – इस पद्धति में निम्नलिखित गुण हैं

(1) **नीति निर्माण के लिये आवश्यक** – जिन विभागों के कार्य दैनिक प्रकृति के नहीं होते अपितु नीति का निर्माण करने के लिए विवेक की आवश्यकता होती है वहाँ मण्डलीय पद्धति अपनाई जाती है।

(2) **मिश्रित प्रकति के कार्यो के लिए** – जब विभागों को अर्धव्यवस्थापिक कार्यों एवं अर्धन्यायिक कार्यों को सम्पन्न करना होता है तब मण्डलीय पद्धति अपनाई जाती है। जब एक विभाग को ऐसे नियम बनाने होते हैं जिसमें नागरिकों के अधिकार प्रभावित होते हैं तब ऐसे कार्यों के लिए सामूहिक और शान्त विचार की आवश्यकता होती है।

(3) **विरोधी हितों में समन्वय की स्थापना** – यदि संगठन में विभिन्न विरोधी हितों में सामन्जस्य स्थापित करना हो तो आयोग पद्धति को अपनाया जाता है। उदाहरणार्थ पूंजीपतियों और श्रमिकों के हित परस्पर विरोधी होते हैं उनमें सामन्जस्य स्थापित करने के लिए श्रम न्यायाधिकरण तथा सुलह मण्डलों की स्थापना की जाती है।

(4) **निर्दलीय संगठन** – इस प्रणाली में समस्त राजनैतिक दलो को प्रतिनिधित्व दे दिया जाता है। अतः इस व्यवस्था में दलीय राजनीति के दोष स्वतः समाप्त हो जाते हैं।

(5) **बाहरी दवाब से सुरक्षा** – यदि प्रशासन को बाहरी दवाब और पक्षपात से बचाना हो तो मण्डलीय प्रणाली उपयुक्त रहती है क्योंकि सभी सदस्यों पर प्रभाव डाल पाना संभव नहीं होता।

6) **विरोधी विचारों में समन्वय** – मण्डलीय व्यवस्था में विभिन्न विरोधी विचारधाराओं वाले व्यक्तिओं को नियुक्त कर उनमें समन्वय स्थापित किया जा सकता है।

मण्डलीय पद्धति के दोष – मण्डलीय पद्धति के दोष निम्नलिखित है

(1) **उतरदायित्व निश्चित करना कठिन** – जब किसी मण्डल द्वारा कोई गलत निर्णय ले लिया जाता है तब उसके लिए किसी व्यक्ति को दोषी ठहराना कठिन होता है। सभी सदस्य एक दूसरे पर दोषारोपण कर अपने उत्तरदायित्व से बचना चाहते है। अंग्रेजी में कहावत है – Every body's responsibility is no body's responsibility) ''सबकी जिम्मेदारी किसी की जिम्मेदारी नहीं होती।''

(2) **कार्य करने में देरी** – अनेक व्यक्तियों द्वारा निर्णय लिये जाने के कारण कार्य करने में देरी होती है। आकस्मिक घटनाओं में जहाँ शीघ्र निर्णय आवश्यक होता है यह व्यवस्था उपयोगी नहीं होती।

(3) **अनुशासन हीनता** – विभाग का प्रत्येक कर्मचारी प्रत्येक सदस्य को प्रसन्न नहीं रख सकता। प्रायः यह देखा जाता है कि कर्मचारी विभिन्न सदस्यों के कृपापात्र बन जाते हैं और विभाग में दलबन्दी व्याप्त हो जाती है।

(4) **व्ययसाध्य** – एक से अधिक व्यक्तियों को वेतन तथा अन्य सुविधायें प्रदान करने के कारण यह प्रणाली अत्यधिक व्ययसाध्य हो जाती है।

(5) **दलीय राजनीति** – इस व्यवस्था में प्रायः स्वतन्त्र और निष्पक्ष रीति से विचार विमर्श नहीं होता। इसका कारण यह है कि मण्डल के सदस्य विशेष योग्यता प्राप्त नहीं होते अपितु मन्त्रियों के पिछलग्गु होते हैं। प्रायः यह देखा गया है कि राजनीति में पिटे मोहरों को आयोग का सदस्य बना दिया जाता है। इस कारण मण्डलों के कार्य निष्पक्ष रीति से सम्पन्न नहीं हो सकते।

(6) **शासकीय कार्य साझा प्रकृति के नहीं होते** – यदि विभाग का कार्य प्रशासन करना है, नीति निर्माण करना नहीं तो मण्डलीय व्यवस्था व्यर्थ है। प्रशासन करना एक व्यक्ति का कार्य है बहुत से व्यक्तियों का नहीं।

हेमिल्टन के अनुसार – ''मण्डलों में बड़ी सभाओं की असुविधायें बढ़ जाती हैं। उनके निर्णय धीरे–धीरे होते हैं, उनमें शक्ति कम होती है। उनका उत्तरदायित्व विकेन्द्रित होता है। उनमें वह ज्ञान और योग्यता नहीं पाई जाती जो एक व्यक्ति द्वारा संचालित व्यक्ति में पाई जाती है।''

Boards take a part of the inconvenience of the large assemblies. The decision are slower. Their energy their responsibility, more diffused, they will not have the same abilities and knowledge and an administration by single man. —**Alexander Hamilton**

महत्वपूर्ण प्रश्न

1. विभागीय संगठन के क्या आधार हैं? उनके अपेक्षाकृत गुणों की विवेचना कीजिये।
2. विभागों के संगठन के विभिन्न आधार क्या है। आपके मतानुसार उनमें से कौन–कौन श्रेष्ठ है और क्यों?
3. आप किन परिस्थितियों में विभाग के एक अध्यक्ष की अपेक्षा मण्डल अथवा आयोग की अध्यक्षता का समर्थन करेंगे? इन दोनों प्रकार के संगठनों के गुण अवगुणों को बताइए।
4. विभाग की एकल ब्यूरो तथा बहुल बोर्ड अध्यक्षता पद्धतियों से क्या अभिप्राय है? इन दोनों पद्धतियों के गुण दोषों की विवेचना कीजिये।

अध्याय - 8

लोक निगम

Public Corporation

भूमिका

राज्य के कार्यो के सम्बन्ध में व्यक्तिवादी धारणा अब समाप्त हो चुकी है। व्यक्तिवादी विचारकों ने राज्य के कार्यक्षेत्र का अत्यधिक सामित कर दिया था। उनकी मान्यता थी कि 'वह सरकार सबसे अच्छी सरकार होती है जो सबसे कम शासन करती है।' इसी मान्यता के आधार पर राज्य के कार्यक्षेत्र को बाह्य आक्रमणों से देश की रक्षा तथा आंतरिक शांति और सुरक्षा की स्थापना तक सीमित किया गया। आर्थिक क्षेत्र में व्यक्तिवादियों द्वारा 'न्यूनतम हस्तक्षेप' (Laiseez faire) के सिद्धांत का प्रतिपादन किया गया। यह कहा गया कि औद्योगिक प्रगति के लिए राज्य को आर्थिक क्षेत्र में हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए। न्यूनतम हस्तक्षेप की इस नीति के कारण उन्मुक्त व्यापार की नीति का प्रचलन हुआ। परिणाम स्वरूप समाज के शक्तिशाली वर्ग ने दुर्बल वर्ग का अत्यधिक शोषण किया। राज्य ने इस निर्बल वर्ग के कल्याण एवं आर्थिक. जीवन के लाभ को समस्त व्यक्तियों को प्रदान करने के लिए आर्थिक जीवन का नियमन करने का दायित्व अपने ऊपर लिया। आर्थिक जीवन के नियमन के लिए राज्य ने व्यापार भी आरम्भ कर दिया। समाजवाद के लक्ष्य को प्राप्त करने वाले लोककल्याणकारी राज्य में मानव जीवन का शायद ही कोई ऐसा क्षेत्र हो जहाँ राज्य विद्यमान न हो। उत्पादन के साधनों पर राज्य का नियंत्रण स्थापित होने के कारण राष्ट्रीयकरण की माँग बढ़ती जा रही है। समस्त लोकतान्त्रिक राष्ट्रों में राज्य ने उद्योग तथा वाणिज्य के क्षेत्र में प्रदेश कर लिया है। खाद्य सामग्री की कमी, मूल्यवृद्धि की समस्या व्यापारियों की स्वार्थी मनोवृत्तियों को समाप्त करने के लिए भारतीय अर्थव्यवस्था का एक व्यापक भाग सार्वजनिक उद्यमों के अन्तर्गत आ गया है।

सरकारी उद्यम सरकार द्वारा संचालित एक ऐसा उद्यम है जिसका संचालन और नियन्त्रण सरकार द्वारा होता है। व्यावसायिक क्षेत्रों में राज्य के प्रवेश तथा लोक प्रशासन के क्षेत्र में भी व्यक्गित व्यवसाय की तकनीक के अनुसरण के परिणाम स्वरूप लोक निगम का निर्माण हुआ। प्रो० राबसन के शब्दों में–''लोक निगम राजनीतिक संगठन और संवैधानिक पद्धति में सबसे अधिक महत्वपूर्ण नवीन आविष्कार है।

लोक निगम का अर्थ–सरकार आवश्यक उद्यमों की व्यवस्था के लिए विभागों का संगठन करती है किन्तु विभागीय व्यवस्था के संचालन में अत्यधिक असुविधा और कठिनाई आती है। अतः वर्तमान शताब्दी में सरकारी क्षेत्र में निगम व्यवस्था को अपनाया गया है। निगम व्यवस्था में व्यापारिक स्वतन्त्रता तथा सरकारी नियंत्रण दोनों का अद्भूत समन्वय पाया जाता है। राष्ट्रपति रूजवेल्ट के शब्दों में––''निगम सरकार की शक्ति का जामा पहने होता है परन्तु उसमें व्यक्तिगत उद्यम की सी प्रेरणा और लोचशीलता पाई जाती है।''

लोक निगम की परिभाषा

(Definition of Public Corporation)

चैम्बर्स शब्द कोष के अनुसार – ''निगम उन व्यक्तियों के समान है जो एक व्यक्ति के समान कार्य करे तथा जिनके गठन का आधार कानून हो।"

डीमांक के शब्दों में – सरकारी निगम जनता द्वारा संचालित ऐसा उद्योग है जो संघीय राज्य अथवा स्थानीय कानून द्वारा वित्तीय उद्देश्य के लिए किसी विशेष व्यवसाय को संचालित करता है।''

प्रो. पिफनर के अनुसार – ''सरकारी निगम विभिन्न व्यक्तियों को एक व्यक्ति के रूप में कार्य करने का अवसर देती है। इस प्रकार निगम एक कृत्रिम व्यक्तित्व के रूप में कार्य करता है। यह किसी कार्य विशेष को करने के लिए कानून की शक्ति से विभूषित होता है।''

ग्लेडन के अनुसार निगम की तीन विशेषताएँ है – कानून द्वारा स्थापित होना, अपने कार्य में पर्याप्त स्वतन्त्रता रखना और सार्वजनिक उद्देश्यों की पूर्ति के लिए कार्य करना। इसकी स्थापना का उददेश्य किसी सार्वजनिक लक्ष्य की पर्ति करना होता है। इसकी स्थापना के प्रधान कारण हैं – राज्य के कार्यों में वृद्धि, इन कार्यों को सरकारी विभागों द्वारा करने में असमर्थता तथा सयुक्त पूँजीवाली कम्पनियों द्वारा इन कार्यों को न किया जाना।

लोक निगम के लक्षण – लोक निगम के सामान्य लक्षण निम्नलिखित है–

(1) **कानून द्वारा निर्माण** – सरकारी निगम का निर्माण व्यवस्थापिका के द्वारा निर्मित कानून के द्वारा होता है। इस कानून के अन्तर्गत सरकारी निगम के उद्देश्य, उसकी शक्तियों तथा कार्यों का वर्णन कर दिया जाता है।

(2) **स्वतन्त्र व्यक्तित्व** – इसे एक वैधानिक व्यक्तित्व प्राप्त होता है। इसके विरूद्ध कोई भी न्यायिक कार्यवाही कर सकता है। यह समझौते कर सकता है तथा अपने नाम पर सम्पत्ति भी रख सकता है।

(3) **निश्चित लक्ष्य** – इसकी स्थापना निश्चित लक्ष्य के लिए होती है तथा यह उसी लक्ष्य की प्राप्ति के लिए प्रयत्नशील रहता है। इसके कार्य व्यापारिक एवं औद्योगिक प्रकृति के होते हैं तथापि इसका प्रमुख लक्ष्य लाभोपार्जन न होकर जनसेवा होता है।

(4) **वित्तीय स्वायत्तता** – इसका वित्तीय प्रबन्ध राष्ट्रीय वित्तीय प्रबन्ध से भिन्न होता है। संसद द्वारा उसे जो राशि प्रदान की जाती है उसका प्रयोग वह स्वेच्छा से कर सकता है।

(5) **स्वायत्तशासी कार्य** – इन्हें अपने कार्यों में स्वायत्तता प्राप्त होती है। मुख्य कार्यपालिका इनके दैनिक कार्यों में हस्तक्षेप नहीं करती।

(6) **शासकीय कर्मचारियों से भिन्न व्यक्तित्व** – लोक निगम के कर्मचारी शासकीय कर्मचारी नहीं होते। उनकी सेवा शर्ते, प्रबन्ध एवं नियंत्रण आदि नागरिक अधिकारों की अपेक्षा व्यापारिक संगठनों के अधिक अनुरूप होते हैं।

(7) **लाभोपार्जन की भावना का अभाव** – सरकारी निगम जनहित की भावना से प्रेरित होकर कार्य करते हैं। लाभोपार्जन की भावना इनमें गौण रूप से पाई जाती है। हर्बर्ट मोरीसन के शब्दों में ''सरकारी निगम को केवल पूँजीवादी व्यापार ही नहीं बनना चाहिए जिसका प्रथम तथा अन्तिम लक्ष्य केवल लाभ को कमाना ही हो। फिर भी इससे यह आशा की जाती है कि यह स्वयं ही अपना व्यय निकाल ले।''

(8) **मन्त्रियों के साथ सम्मानजनक सम्बन्ध** – सरकारी निगमों पर मंत्रिमंडल का प्रत्यक्ष नियंत्रण नहीं रहता। मन्त्री केवल व्यापक नीति का ही निर्माण कर सकते हैं तथापि दोनों के सम्बन्ध सम्मानजनक होते हैं।

(9) **एकाधिकारी प्रवृत्ति** – निगम के कार्य एकाधिकार प्रकृति के होते हैं उनमें प्रतिस्पर्धा की कोई संभावना नहीं होती। उदाहरणार्थ जिन मार्गों को राष्ट्रीयकृत मार्ग घोषित किया जाता है इन पर प्राइवेट बसे नहीं चलतीं।

सरकारी निगम का उद्देश्य – लोक निगम की स्थापना अग्रलिखित उद्देश्यों के लिए की जाती है

(1) **ऋण की सुविधा** – निगम साधारण से साधारण व्यक्ति द्वारा संचालित उद्योग के लिए ऋण की व्यवस्था करता है। जीवन बीमा निगम द्वारा विभिन्न अर्धसरकारी एवं गैर सरकारी उद्यमों के लिए धन की व्यवस्था की जाती है।

(2) **क्षेत्र विशेष के चतुर्मुखी विकास के लिए** – इस दृष्टि से स्थापित निगमों का उद्देश्य किसी विशिष्ट भू–क्षेत्र का विकास करना होता है। पुर्नवास वित्त आयोग तथा दामोदर घाटी निगम इसी श्रेणी में आते हैं।

(3) विभिन्न प्रांतों में औद्योगिक विकास के लिए इस प्रकार के विभिन्न निगमों की स्थापना की गई है।

सरकारी निगम तथा विभागीय प्रशासन में अन्तर
Difference between Public Corporation and Government Department

यद्यपि विभाग और सरकारी निगम दोनों ही सरकारी उपक्रम के दो रूप है तथापि प्रक्रिया, संसद तथा कार्यपालिका के साथ उनके सम्बन्धों की दृष्टि से उनमें पर्याप्त भिन्नता पाई जाती है। इन दोनों में निम्नलिखित भिन्नताएँ होती हैं

(1) **कानूनी स्वायत्तता सम्बन्धी** – सरकारी निगमों को आंतरिक मामलों में स्वायत्तता प्राप्त होती है किंतु विभागों को इस प्रकार की स्वायत्तता प्राप्त नहीं होती।

(2) **संसदीय नियंत्रण की दृष्टि से** – सरकारी निगमों पर संसदीय नियत्रण विभागों की अपेक्षा कम होता है। संसद की स्वीकृति के बिना विभाग एक पैसा भी खर्च नहीं कर सकते। विभाग किसी अन्य अभिकरण से धन लेने के लिए स्वतत्र नहीं होते हैं। इसके विपरीत निगम वित्तीय दृष्टि से संसदीय नियेत्रण से मुक्त होते हैं। विभाग की प्रत्येक क्रिया संसदीय सूक्ष्म नियत्रण का विषय है परन्तु निगम के केवल बाह्य मामलों पर नियंत्रण रखती है।

(3) **उत्तरदायित्व की दृष्टि से** – निगमों के सम्बन्ध में व्यवस्थापिका द्वारा प्रश्नों का उत्तर लिए जाने की शक्ति सीमित है। उस मन्त्री का जिसका सरकारी निगमों से संबंध है। उत्तर देने के लिए बाध्य नहीं किया जा सकता परन्तु विभाग के संबंध में संसद द्वारा प्रश्न पूछे जाने पर मंत्री उत्तर देने के लिए बाध्य होता है।

(4) **वित्तीय दृष्टि से** – सरकारी निगम संसद द्वारा प्राप्त होने वाली आर्थिक सहायता के अतिरिक्त अपनी पूंजी में वृद्धि करने, साधन जुटाने, धन एकत्रित करने, उधार लेने तथा देने, स्वयं बजट तैयार करने के लिए, स्वतंत्र होते हैं परन्तु विभाग को यह स्वतंत्रता प्राप्त नहीं होती।

(5) **कार्मिक वर्ग के प्रशासन की दष्टि से** – विभागों के कर्मचारी नागरिक सेवाओं के सदस्य होते हैं। उन पर सेवा शर्तें नागरिक सेवाओं के नियमों के अनुसार लागू होती है परन्तु सरकारी निगम में सेवा शर्तों में निजी उद्योग जैसी लोचशीलता रहती है।

(6) **क्रय–विक्रय के नियमों की दृष्टि से** – वस्तओं को खरीदने तथा बेचने की प्रक्रिया की दृष्टि से विभागों को कठोर नियमों के आधीन कार्य करना होता है। विभागों में बिना टेन्डर आमंत्रित किए किसी वस्तु की खरीद नहीं की जा सकती। यदि सरकारी निगमों की प्रत्यक्ष वार्ता द्वारा अच्छी चीजें सुलभ हो जाती हैं तो वह बिना औपचारिक नियमों का पालन किए उन्हें खरीद सकते हैं।

(7) **लेखा परीक्षण की दृष्टि से** – विभागों में सरकारी आडिट करते समय वैधानिकता एवं ईमानदारी की जांच की जाती है। निगमों के वार्षिक हिसाब–किताब की परीक्षा दलीय उद्योगों की भाँति की जाती है।

(8) **कानूनी व्यक्तित्व की दृष्टि से** – विभागों पर मुकदमा नहीं चलाया जा सकता है जबकि निगमों पर मुकदमा चलाया जा सकता है। विभागों को कानूनी व्यक्ति नहीं माना जाता जबकि निगम को कानूनी व्यक्ति माना जाता है।

(9) **राजनैतिक दबाव की दृष्टि से** – सरकारी निगम अपने कार्य की प्रकृति एवं संगठन के कारण राजनैतिक दबाव से उस मात्रा में प्रभावित नहीं होते जिस मात्रा में विभागों की प्रक्रियाओं पर राजनैतिक दबाव पड़ता है।

सरकारी निगम पर मंत्रिमण्डल एवं संसद का नियन्त्रण
Ministerial and Parliamenary Control over Public Corporation

वर्तमान में लोक निगम द्वारा सरकारी उद्योगों को चलाने की पद्धति का चलन निरन्तर बढ़ता जा रहा है। अतः सार्वजनिक हित की दृष्टि से इन पर नियंत्रण स्थापित किया जाना आवश्यक प्रतीत होता है।

मंत्रिमण्डल का नियन्त्रण – विभिन्न राष्ट्रीय योजनाओं में समन्वय उत्पन्न करने के लिए यह आवश्यक है कि सरकारी उद्यमों के नियन्त्रण के सम्बन्ध में मन्त्रियों के पास कुछ शक्तियाँ होनी चाहिए, किन्तु यह नियन्त्रण उसी मात्रा तक होना चाहिए जिससे सरकारी नियमों की स्वतन्त्रता पर आँच आती हो। सरकारी उद्यमों पर मंत्री मण्डल का नियन्त्रण निम्नलिखित प्रकार से स्थापित किया जाता है –

1. **संचालक मण्डल की नियुक्ति** – प्रायः समस्त सरकारी निगमों में उससे सम्बन्ध रखने वाले विभाग के मंत्री को निगम के संचालक मण्डल के सदस्यों को नियुक्त करने का अधिकार दिया जाता है। भारतवर्ष में न केवल अध्यक्ष और सदस्यों को अपितु इसके प्रबन्ध निर्देशकों और महाप्रबन्धकों को नियुक्त करने के अधिकार भी दिए जाते हैं। इन समस्त व्यक्तियों को पदच्युत करने का अधिकार भी मंत्री के पास होता है।
2. **सामान्य नीति सम्बन्धी निर्देश देने का अधिकार** – मंत्रियों को सरकारी निगमों को सामान्य नीति विषयक निर्देश देने का अधिकार होता है। सरकारी निगम सार्वजनिक उद्देश्यों की पूर्ति ठीक प्रकार से करें यह देखना मंत्री का कार्य है।

   अतः इसके लिए आवश्यक निर्देश देना मंत्री का अधिकार है। परन्तु मंत्रियों को निगमों के दैनिक कार्य में हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए। मंत्रियों को कोई भी निर्देश जारी करने से पूर्व निर्देशक मण्डल के सदस्यों से परामर्श ले लेना चाहिए तथा ये निर्देश लिखित रूप से देने चाहिए।

(3) **आर्थिक प्रतिबन्धों द्वारा** – कई बार निगम के अधिनियम में ही आर्थिक प्रतिबन्धों का उल्लेख कर दिया जाता है। साधारणतः सभी निगमों को पूँजी बढाने. रूपया उधार लेने, अंशधारी बढ़ाने के लिए, पूंजी कम करने के लिए दो हजार माहवार से अधिक वेतन पाने वाले अधिकारी की नियुक्ति के लिए या 40 लाख रूपये से अधिक पूंजी व्यय करने के लिए शासन की अनुमति आवश्यक रहती है।

मन्त्रिमण्डलीय नियन्त्रण के विपक्ष में तर्क – यद्यपि सरकारी निगमों पर मन्त्रिमण्डल का नियन्त्रण उन्हें स्वेच्छाचारी होने से राकने के लिए लगाया जाता है परन्तु इसके विपरीत परिणाम भी हो सकते हैं

(1) सरकारी निगम की स्वायत्तता और स्वतन्त्रता समाप्त हो जाती है। मंत्रियों द्वारा अपनी शक्तियों के दुरूपयोग की सम्भावनायें सदैव रहती हैं। अपने नियुक्ति सम्बन्धी अधिकारों का दुरूपयोग कर वे अपने निर्वाचकों को पुरस्कृत कर सकते है।

(2) इस संभावना से इंकार नहीं किया जा सकता कि मंत्रीगण नीति का नाम लेकर निगम के प्रशासन के दैनिक मामलों में अनुचित हस्तक्षेप करें।

(3) मन्त्रिमण्डल निगम के कार्यों में पर्याप्त हस्तक्षेप तो करते हैं परन्तु उसका उत्तरदायित्व अपने ऊपर नहीं लेना चाहते। अनेस्ट डेविज के शब्दों में––''यद्यपि पर्दे के पीछे रहकर वे संचालक मण्डल को पर्याप्त रूप से प्रभावित करते हैं किन्तु वे अपने कार्यों के लिए जनता के प्रति उत्तरदायित्व वहन नहीं करना चाहते। व्यक्तिगत रूप से वे अपने उत्तरदायित्व का प्रयोग करते है किंतु जनता को उसके लिए जवाब नहीं देते।''

मन्त्रीय नियन्त्रण की निरंकुशता को सीमित करने के लिए पाल.एच.एपेलबी का मत है कि – ''लोक निगम को मंत्री रूपी पिता की गोद में तब तक नहीं डालना चाहिए जब तक प्यार करने वाली संसदीय माता प्राप्त न हो जाये जो पिता के अत्यधिक अनुशासन को रोक सके।

सरकारी निगमों पर संसदीय नियन्त्रण – संसदीय शासन व्यवस्था में संसद जनता के हितों की सर्वोच्च संरक्षक होती है। लोक निगमों का निर्माण जनता के सार्वजनिक हितों की प्राप्ति के लिए किया जाता है। उन्हें अपने कार्यों को सम्पादित करने के लिए सार्वजनिक कोष से धन दिया जाता है। अतः संसद निगम की नीति निर्धारित करती है तथा मन्त्री के माध्यम से उस पर नियन्त्रण रखती है। संसदीय नियन्त्रण की स्थापना निम्नलिखित तरीके से की जाती है–

(1) प्रश्न पूछकर
(2) किसी उद्यम विशेष के कार्यों पर संसद में आधा घण्टे की बहस की मांग कर।
(3) अत्यावश्यक विषय पर स्थगन प्रस्ताव प्रस्तुत कर।
(4) बजट पर बहस के समय उद्यम की आलोचना कर।
(5) विधेयक तथा प्रस्ताव पर बहस कर।
(6) उद्यमों के वार्षिक प्रतिवेदन पर विचार कर।
(7) लेखा परीक्षण सम्बन्धी प्रतिवेदन की समीक्षा कर।
(8) संसदीय समितियों के माध्यम से नियन्त्रण।
(9) सामान्य नीति विषयक निर्देश देकर।
(10) निगम की योजनाओं को मंत्रालय की स्वीकृति प्राप्त करनी आवश्यक होती है।
(11) निगम को अपने अतिरिक्त साधनों के लिए मन्त्रालय की स्वीकृति लेनी आवश्यक होती है।
(12) जाँच आयोग की नियुक्ति की मांग स्वीकार करके।

मर्यादाएँ – सरकारी निगमों पर संसदीय नियन्त्रण की कुछ मर्यादाएं है जिनके परिणाम स्वरूप यह नियन्त्रण उतना प्रभावशाली नहीं रह पाता।

1. संसद सदस्यों की संख्या इतनी अधिक होती है कि सभी विषयों पर प्रभावशाली ढंग से विचार विमर्श नहीं किया जा सकता।
2. समाजवादी विचारधारा और राष्ट्रीकरण की प्रवन्ति के कारण सरकारी उद्यमों के कार्यक्षेत्र में वृद्धि हो रही है। संसद सभी निगमों पर प्रभावशाली नियन्त्रण की स्थापना नहीं कर सकती।
3. संसद सदस्य विशेषज्ञ नहीं होते परिणाम स्वरूप वे सरकारी उद्यम की जटिल समस्याओं को समझने में असमर्थ रहते है।
4. निगम के अधिकारी निर्भय होकर संसद में अपनी समस्याओं को प्रस्तत नहीं कर सकते परिणाम स्वरूप संसद निगम सम्बन्धी अनेक तथ्यों की जानकारी से वंचित रह जाती है।

प्रवर समिति द्वारा नियन्त्रण
Control by a Select Committee

संसदीय नियन्त्रण की सीमाओं को देखकर अनेक विद्वानों का विचार है कि सरकारी निगमों पर नियन्त्रण का कार्य एक प्रवर समिति को सौंप देना चाहिए। भारत में सरकारी निगमों पर नियन्त्रण रखने के लिए प्रवर समिति नियुक्त करने का सुझाव लंकासुन्दरम् द्वारा 1953 में प्रस्तुत किया गया किंतु तत्कालीन वित्तमंत्री सी.डी.देशमुख ने इस सुझाव को अस्वीकार कर दिया। सन् 1956 में जीवन बीमा निगम पर वाद–विवाद करते समय अशोक मेहता ने प्रवर समिति की स्थापना का प्रश्न उठाया। उन्होंने कहा यह ससद निरीक्षण करने के कार्य में तब तक समर्थ नहीं हो सकती जब तक सरकार से स्वतंत्र विशेषज्ञों के एक समूह द्वारा इसे विभिन्न निगमों में क्या हो रहा है, यह जानने के लिए सहयोग तथा समर्थन प्रदान न किया जाए। इस अवसर पर वित्तमंत्री ने इस सुझाव का समर्थन किया। 1957 में कांग्रेस दल द्वारा श्रीकृष्णा मेनन की अध्यक्षता में कृष्णा मेनन समिति' का गठन किया गया। इस समिति ने भी प्रवर समिति के संगठन का समर्थन किया और इस सम्बन्ध में निम्नलिखित तर्क प्रस्तुत किये।

(1) प्रवर समिति एक स्थायी समिति होगी जो निगम के कार्यों में निरतंर रूचि लेगी।
(2) वास्तविक सत्य का अनावरण होगा।
(3) संसद सदस्यों को संतुष्टि।
(4) दोषों के निराकरण के विविध अवसर प्राप्त होंगे।

(5) संसद सदस्यों की आकांक्षाओं और इच्छाओं के अनुरूप व्यवस्था होगी।

(6) जनता को स्पष्ट आश्वासन प्राप्त होगा।

(7) संसद को अधिकाधिक सहयोग के अवसर प्राप्त होंगे।

प्रवर समिति के विपक्ष में तर्क – प्रवर समिति के गठन के विरोध में निम्नलिखित तर्क प्रस्तुत किए जाते हैं

1. **अनावश्यक हस्तक्षेप** – इस समिति की स्थापना से अनावश्यक हस्तक्षेप का मार्ग प्रशस्त होगा। यह एक अर्न्तविरोधी विचार होगा कि एक ओर तो हम सरकारी उद्यमों को प्रशासन का ऐसा स्वरूप देना चाहते हैं जिससे उसे स्वायत्तता प्राप्त हो सके किन्तु दूसरी ओर उस पर अतिशय नियंत्रण स्थापित करने के पक्षपाती हैं। हर्बट मोरीसन का मत है कि "यह समिति सरकारी निगमों में लालफीताशाही, साहस विहीन एवं रूढ़िवादी नागरिक सेवा को जन्म देगी।
2. **उत्तरदायित्व की स्थापना में भ्रम** – प्रवर समिति के संगठन से सरकारी निगमों के कर्मचारियों में भ्रम उत्पन्न हो जाएगा। निगम के अधिकारी यह नहीं जान पायेंगे कि वे मन्त्रिमण्डल के प्रति उत्तरदायी हैं या संसद के प्रति अथवा नई प्रवर समिति के प्रति।
3. **निगम की प्रेरणा शक्ति की समाप्ति** – निगम के सदस्य सदैव इस बात से भयभीत रहेंगे कि समिति उनके दोषों को ढूँढने के लिए प्रयत्नशील है। यद्यपि निगमों को दैनिक कार्यों में अधिकाधिक स्वतन्त्रता प्राप्त होनी चाहिए किन्तु जब यह समिति कार्य करेगी तो स्वतन्त्रता नष्ट हो जाएगी। लार्ड रीथ के शब्दों में ''जितना अधिक मुझे लगेगा कि हर कोई मेरे कन्धों पर बैंठकर मेरा कार्य देख रहा है और बाद में कभी भी उसका निरीक्षण कर सकता है। मैं एक निर्णय लेने में उतना ही अधिक कतराऊंगा और इस प्रकार कम निर्णयात्मक बन जाऊंगा। ऐसी स्थिति में स्वाभाविक है कि उसके परिणाम भी कम होते जाएंगे।''
4. **समितियों के नियन्त्रण में वृद्धि एवं उससे उत्पन्न दोष** – प्रवर समिति के निर्माण से सरकारी निगमों पर पर्यवेक्षण का कार्य तीन समितियों में बँट जाएगा। लोक–लेखा समिति, प्राक्कलन समिति तथा प्रवर समिति तीनों ही लोक निगम की बातों पर विचार करेगी। व्यावहारिक दृष्टि से यह सम्भव नहीं है।

अतः यह समिति सरकारी निगमों पर प्रभावी ढंग से नियन्त्रण करती है इसलिए इस समिति का होना बहुत जरूरी है जिससे कि सरकारी निगमों पर संसद का नियन्त्रण समानान्तर रूप से रहे।

महत्वपूर्ण प्रश्न

1. लोक निगम की परिभाषा दीजिए। इस प्रणाली की मुख्य विशेषताएँ कौन–कौन सही हैं?
2. सरकारी निगमों पर संसदीय नियन्त्रण के कौन–कौन से तरीके हैं? भारत के सन्दर्भ में अपने प्रश्न का उत्तर दीजिए।
3. राष्ट्रीकृत उद्योगों के संचालन के लिए बनाए गए संगठन का विवेचन कीजिए।
4. सरकारी निगम पर मन्त्री के नियन्त्रण एवं उसके माध्यम से संसद के नियन्त्रण पर विचार व्यक्त कीजिए।
5. सरकारी निगम क्या है? समाजवादी समाज में इनकी उपयोगिता का विवेचन कीजिए।
6. सरकारी निगम क्या है? किस प्रकार इसका संगठन विभाग से भिन्न होता है?
7. सरकारी निगम सरकारी विभाग से किन बातों में भिन्न होता है? सरकारी निगम किन उद्देश्यों से स्थापित किए जाते है।

अध्याय - 9

स्वतंत्र नियामिकी आयोगः रचना और कार्य

Independent Regulatory Commission : Composition and Functions

भूमिका

सभ्यता के विकास के साथ–साथ जीवन से सम्बन्धित समस्त समस्याएं विषम एवं जटिल बन गई है। इन उलझी हुई समस्याओं में प्रशासन भी सम्मिलित है। हम इन विषमताओं को औद्योगिक क्रान्ति का मूलभूत अभिशाप मानते हैं। जिसने समाज को दो व्यापक वर्गों–श्रमिक तथा पूंजीपति में विभाजित करके श्रमिक को इस योग्य ही नहीं छोड़ा कि वह असमानताओं के संदिग्ध वातावरण में इंजन के साथ–साथ नैतिकता का जीवन व्यतीत कर सके और सुखमय जीवन द्वारा समाज और परिवार के प्रति अपने कर्तव्यों निश्चय ही समाज के हित में नहीं है। दस असामाजिकता को अवरूद्ध करने के लिए संविधान अधिनियम तथा कार्यपालिका सम्बन्धी समस्त साधनों का प्रयोग किया जाता है। राष्ट्रीय स्थानीय एवं राजकीय तीनों स्तरों पर आर्थिक व्यवस्था के सम्बन्ध में नियन्त्रण रखने का प्रयास किया जाता है अतः नियामकीय कार्य प्रत्येक देश में किये जाते हैं। ब्रिटेन और अमेरिका इसके लिए किसी नियम अथवा परिपाटी से बंधे हुए नहीं है।

अमेरिका में भी नियंत्रण कार्य बहुत कुछ ब्रिटेन तथा भारत की ही भांति होता है परन्तु फिर भी कुछ भिन्नता पाई जाती है। साधारण नियामक विधि के अतिरिक्त स्वतन्त्र नियामिकी आयोगों की व्यवस्था वहां पाई जाती है। स्वतन्त्र नियामकीय आयोग अमेरिका की ही देन है। इन आयोगों की उत्पत्ति बहुत पुरानी नहीं है। 1863 में पहला आयोग (Inter State Commission) बना जिसका संगठन मुख्य कार्यपालक के ही नियन्त्रण में रखा गया। राष्ट्रपति बहुत ही सरलता से उसके सदस्यों को हटा सकता था। राष्ट्रपति की शक्तियां बहुत थीं, इसकी काफी आलोचना हुई जिसके फलस्वरूप 1997 में इसका पुनर्गठन किया गया और कार्यपालिका के नियन्त्रण से मुक्त करके उसे स्वशासित बनाया गया। तभी से समय–समय पर अमेरिका में इस प्रकार के स्वतंत्र नियामकीय आयोगों की स्थापना होती रही है।

अमेरिका में अध्यक्षात्मक सरकार की व्यवस्था है, जिसका आधार शक्ति पृथक्करण है। राष्ट्रपति कार्यपालिका का वास्तविक तथा अत्यंत शक्तिशाली व्यक्ति है। कांग्रेस प्रत्येक समय राष्ट्रपति की बढ़ती हुई शक्तियों से भयभीत रहती है। वह यह नहीं चाहती कि राष्ट्रपति तानाशाह बने। राष्ट्रपति की शक्तियों पर कुछ और अधिक प्रतिबन्ध लगाने के लिए कांग्रेस अब किसी भी विशेष कार्य को पूर्ववत किसी भी विभाग विशेष को समर्पित न करके उसके लिए नया अभिकरण स्थापित कर देती है। इस प्रकार के स्थापित अभिकरण विधानमण्डल के ही अधीन कार्य करते हैं। यद्यपि उनके सदस्य राष्ट्रपति द्वारा नियुक्त किये जाते हैं परन्तु उन्हें वे सुगमता से नहीं हटा सकते। इसलिए तो यह अभिकरण स्वतंत्र आयोग कहलाते हैं। जो क्षेत्र अथवा कार्य इन आयोगों को समर्पित किये जाते है उनके सम्बन्ध में ये लगभग स्वतंत्र होते हैं। विधानमण्डल तथा कार्यपालिका क्षेत्रों का हस्तक्षेप इसके सम्बन्ध में उतना विस्तृत नहीं होता जितना कि वह अन्य सरकारी आयोगों के सम्बन्ध में होता है। नियामिकी स्वतंत्र उद्योगों के कार्य अर्ध–कानूनी अर्ध–कार्यपालक तथा अर्धन्यायिक होते हैं। इसीलिए बहुत से लोग इन्हें सरकार का चतुर्थ भाग कहते हैं। कछ लोग इन्हें विधानमण्डल के अंग कहते हैं और कुछ आलोचक इन्हें स्वायत्तता का पर्वत कहकर पुकारते हैं। इन्हें किसी भी नाम से क्यों न पुकारा जाए। नियामकीय स्वतंत्र आयोग विशेष रूप से अमरीका की ही देन है। इनके लक्ष्यों का संक्षिप्त विवरण निम्नलिखित रूप से प्रस्तुत किया जा सकता है।

स्वतंत्र नियामिकी आयोग का अर्थ

Meaning of Independent Regulatory Commission

स्वतत्र नियामिकी आयोग संविधान अथवा किसी विशेष अधिनियम द्वारा निर्मित ऐसे संस्थान हैं जो मुख्य रूप से व्यक्तिगत सम्पत्ति तथा सामान्य जनता की लोकहित की भावना को पूर्ण करते हैं। यह सामाजिक और आर्थिक जीवन को व्यवस्थित करने वाले ऐसे प्रतिमान निर्मित करते हैं जिनका पालन करना इच्छा अथवा सुविधा की अपेक्षा आवश्यकता पर अधिक निर्भर करता है। इनका लक्ष्य सुव्यवस्थित समाज को स्वस्थ और सुरक्षित वातावरण में सहेजना है। इसकी स्वतंत्रता का आशय यह है कि यह प्रत्यक्ष रूप से विभागीय नियंत्रण से मुक्त है। लेकिन स्वतंत्रता से इनका निम्नलिखित अभिप्रायः नहीं है

(1) यह कांग्रेस से स्वतंत्र नहीं है, जिसने इनकी रचना की है, इन्हें शक्ति से परिपूर्ण किया है तथा इन्हें वर्ष के वर्ष धन प्रदान करती है। कांग्रेस जब चाहे इन्हें समाप्त कर सकती है।
(2) यह न्यायालय से भी स्वतंत्र नहीं है। सर्वोच्च न्यायालय उनके निर्णयों के विरुद्ध अपील सुनती है। यह उनके निर्णयों को स्थायी बना सकती है, परिवर्तन कर सकती है तथा उन्हें समाप्त कर सकती है।
(3) यह आयोग राष्ट्रपति के नियंत्रण से भी पूरी तरह मुक्त नहीं है। वह कांग्रेस के अनुमोदन से किसी सदस्य को पद से हटा सकता है।

इन आयोगों की स्वतंत्रता निम्न चार अर्थों में व्यवस्थित दिखाई देती है।

(1) इनका कार्यकाल राष्ट्रपति के कार्यकाल से अधिक है। इसमें एक समय में एक सदस्य ही सेवा निवृत्त होता है। राष्ट्रपति अपने कार्यकाल की समाप्ति के बाद इन्हें प्रतिबंधित नहीं कर सकता।
(2) यथार्थ राष्ट्रपति कांग्रेस के अनुमोदन से किसी सदस्य को पद से हटा सकता है लेकिन कांग्रेस किसी सदस्य को पद से हटाने के विशेष कारण जानना चाहेगी। बिना निश्चित कारण के किसी सदस्य को पद मुक्त नहीं किया जा सकता।
(3) इन आयोगों का निर्णय अन्तिम होता है। इनके निर्णय व्हाइट हाउस की फाइलों में जमा नहीं होते और न ही वहां उन पर किसी प्रकार का वाद–विवाद किया जाता है।
(4) राष्ट्रपति और इन आयोगों के मध्य कोई निश्चित संचारण व्यवस्था नहीं है।

नामकरण के कारण (Reasons for Nomanclature) – जब हम स्वतन्त्र नियम की आयोग के नामकरण की पूर्ण व्यवस्था को देखते है तब हमें यह आभासित होता है कि तीनों शब्द अपना पृथक–पृथक महत्व रखते हैं।

स्वतंत्र (Independent) – यह आयोग उपरोक्त व्यवस्थाओं के आधार पर बहुत सीमा तक बाह्य बंधनों से सर्वथा मुक्त है। यह व्हाइट हाउस के एक विभाग की तरह राष्ट्रपति के आदेशों का अनुपालक नहीं है। उपरोक्त विवेचन से इसके स्वतंत्रत अस्तित्व का आभास सहज रूप में मिल जाता है।

नियामिकी (Regulatory) – इन्हें नियामिकी नामकरण इसलिए दिया गया है क्योंकि यह आयोग नागरिकों अथवा उनके समूहों द्वारा किये जाने वाले कार्यों को नियमित करते हैं। सामाजिक जीवन में संभावित असामाजिकता को अवरूद्ध करने के लिए ऐसे आयोगों की विशेष आवश्यकता होती है। यह अमेरिका के समाज के आर्थिक और सामाजिक जीवन को व्यवस्थित और नियमित करते हैं इसलिए इन्हें नियामिकी कहते हैं।

आयोग (Commission) – इन्हें आयोग का नाम इस कारण दिया गया है क्योंकि इनकी प्रबंध व्यवस्था, निर्देश व्यवस्था तथा नियंत्रण व्यवस्था बोर्ड पद्धति के अनुरूप होती है। इसमें एक व्यक्ति की वरीयता की अपेक्षा कुछ सदस्यों की सम्मिलित वरीयता कार्य करती है। यह कुछ सदस्यों के संयुक्त उत्तरदायित्व की भावना से परिचालित होता है।

इस व्यवस्था के विभिन्न नाम (Different names of this System) – 'स्वतंत्र नियामिकी आयोग' को अमेरिका में विभिन्न नामों से जाना जाता है। यह विभिन्न नाम इसकी वास्तविकता और वस्तु स्थिति दोनों से सम्बन्ध रखते है। इन्हें इसके उपरोक्त प्रचलित नाम के अतिरिक्त निम्नलिखित नामों से जाना जाता है

(1) **सरकार की शीर्षहीन शाखा (Headless branch of the government)** – ऐसा कहे जाने का मुख्य कारण यह है कि इसको मुख्य कार्यपालिका जैसी कोई सत्ता ऊपर से नियंत्रित नहीं करती।

(2) **कांग्रेस की भुजाएं (Arms of the Congress)** – यह व्यवस्थापन के महत्वपूर्ण कार्य को सफल करती है, इसलिए इसकी इस अर्थ प्रकृति के आधार पर इन्हें कांग्रेस (व्यवस्थापिका) की भुजाएं कहा गया है।

(3) **स्वायत्तता के द्वीप समूह (Islands of autonomy)** – प्रत्येक संस्था की मुख्य कार्यपालिका आदेशों को स्वीकार करने के अतिरिक्त अन्य कोई विकल्प नहीं होता लेकिन अमेरिका के राष्ट्रीय जीवन में इन संस्थाओं के कारण एक अजीब सी वस्तुस्थिति बन गई है। इनके कार्यक्षेत्र में राष्ट्रीय जीवन भी अधिक हस्तक्षेप करने की स्थिति में नहीं है। इन्हें इसी आधार पर 'स्वतंत्रता का द्वीप समूह' कहा जाता है।

(4) **सरकार का चतुर्थ शाखा (Fourth Branch of the governmant)** – स्वतंत्र नियामिकी आयोग की प्रकृति अर्धन्यायिक, अर्ध प्रकासकीय तथा अर्ध विधायकी होती है। ऐसी स्थिति में यह एक सर्वमान्य सत्य है कि यह आयोग सरकार की तीनों शाखाओं के अनुरूप, कार्य करते हैं। इस कारण उन्हें 'सरकार की चतुर्थ शाखा' की संज्ञा दी जाती हैं।

आयोग की स्थापना के उददेश्य (Aims for the establishment of the Commission) – स्वतत्र नियामिकी आयोग अमेरिका की विशेष परिस्थितियों में जन्मी एक विचारशील संस्था है। इस संस्था के पीछे अमेरिका का सारा राजनैतिक चिन्तन दिखाई देता है। सामान्य रूप से इसकी स्थापना के अग्रलिखित कारण हैं

(1) अमेरिका का प्रबुद्ध समाज किसी एक व्यक्ति और किसी एक संस्था को अपरिमित शक्ति देने की स्थिति में नहीं है। यह आयोग इसी दृष्टिकोण का परिणाम है।

(2) अमरिका में बहुत अंशों तक शक्ति पृथक्करण सिद्धान्त को अपनाया गया है। इस सिद्धान्त क कारण राष्ट्रपति कार्यपालिका शक्तियों का स्त्रोत है किन्तु राष्ट्रपति की शक्तियों को सीमा में प्रतिबद्ध करने के लिए इस व्यवस्था को अपनाया जाना आवश्यक है। कार्यपालिका शक्तियों को बढ़ता हुआ देखकर कांग्रेस भय की स्थिति में होती है। यह आयोग उस मानसिक भय की स्थिति से उसे मुक्ति देता है।

(3) व्यवस्थापिका के अपरिमित दायित्व होते हैं। वह सभी कार्य अपने आप सम्पन्न नहीं कर सकती। उसके दायित्वों या सम्पन्न करने के लिए तथा उसके बोझ को कम करने के लिए व्यवस्थापिका ने इसे अपनी पूरक सस्था क रूप में निर्मित किया है।

विशषताए (Characteristics) – जब हम इस आयोग व्यवस्था के संगठन और स्वरूप पर विचार करते है तब यह आभासित होता है कि यह संगठन एक विशेष प्रकार की परिस्थितियों में जन्मा है। इसकी सामान्य विशेषताएं निम्नलिखित हैं

(1) **कार्यपालिका प्रतिबन्धों से मुक्त (Free from the restrictions of Executive)** – स्वतंत्र नियामिकी व्यवस्था का जन्म संसद की विशेष विधि के द्वारा सहयोग, समर्थन और सदभाव प्राप्त करने के लिए हुआ है। कांग्रेस यह नहीं चाहती कि अमेरिका का राष्ट्रपति अपरिमित शक्तियों का अधिग्रहण कर ले। यद्यपि कार्यपालिका शक्तियों का वही अभिवक्ता होता है लेकिन इन आयोगों की यह विशेषता है कि यह कार्यपालिका के प्रत्यक्ष नियन्त्रण, और आज्ञा क्षेत्र से बाहर होते हैं। यह व्हाइट हाउस के एक विभाग की तरह कार्य नहीं करते। इन्हें शीर्षहीन शाखा की उपाधि दिए जाने का एकमात्र कारण इन्हें कार्यपालिका के प्रतिबन्धों से मुक्त करना है। यह कार्यपालिका के प्रत्यक्ष बन्धन से मुक्त है। इस तथ्य की पुष्टि निम्नलिखित प्रमाणों से होती है–

(1) इनका कार्यकाल राष्ट्रपति के कार्यकाल से अधिक होता है।
(2) राष्ट्रपति भी कांग्रेस की अनुमति और स्वीकृति के अभाव में इसके किसी सदस्य को पदच्युत नहीं कर सकता।
(3) इनके नीति निर्धारण तथा निर्णयों के सम्बन्ध में राष्ट्रपति का कोई हस्तक्षेप स्वीकार्य नहीं होता।
(4) यह राष्ट्रपति को अपने प्रतिवेदन प्रस्तुत नहीं करते।
(5) राष्ट्रपति और इन आयोगों के बीच किसी प्रकार के परम्परागत सम्बन्ध नहीं होते।

2. **कार्यों की मिश्रित प्रकृति (Mixed nature of the functions)** – ''व्यवस्थापिका, कार्यपालिका और न्यायपालिका की भिश्रित प्रकति ही इसकी स्थापना का एक बड़ा कारण है। इसका कारण यह है कि शक्ति पृथक्करण सिद्धांत के अनुसार सरकार की तीनों शाखायें एक दूसरे के अधिकार और शक्ति का उपभोग नहीं कर सकतीं। यह आयोग व्यवस्था ऐसा करने के लिए स्वतंत्र है। यह आयोग मुख्य निष्पादक और न्यायपालिका दोनों से स्वतंत्र रहकर निर्णय करता है, यह अपनी प्रक्रिया और उसके अनुरूप विधि का निर्माण करता है (लेकिन यह देश की प्रचलित विधि और व्यवस्था से किसी प्रकार भी भिन्न नहीं होता)। इस प्रकार यह अपने निर्णयों को प्रशासित करता है तथा अपने प्रशासकीय दायित्वों को स्वतंत्रतापूर्वक सम्पन्न करता हैं।

3. **कांग्रेस की सहायक व्यवस्था (Helping system of the Congress)** – स्वतंत्र नियामिकी आयोग व्यवस्था मुख्य रूप से कार्यपालिका की निरंकुश प्रकृतियों पर अंकुश लगाने के लिए स्थापित की गई थी। लेकिन इसे हम पूरी तरह से नकारात्मक दृष्टिकोण के रूप में स्वीकार नहीं कर सकते हैं। यह कार्यपालिका के बोझ को कम करने के लिए कार्य करके समस्त व्यवस्था को स्थायित्व प्रदान करती है। यह कार्य इसकी गौण प्रकृति के अंग हैं। यह अपनी रचनात्मक प्रवृत्ति के आधार पर विधायिका के कार्य भी सम्पन्न करती है। यही कारण है कि इसे कांग्रेस की भुजाएं (Arrns of the Congress) की संज्ञा दी जाती है। यह आयोग कांग्रेस के प्रति उत्तरदायी है। इसका प्रत्येक कार्य व्यवस्थापन में कांग्रेस का समर्थन करता है तथा अर्ध–विधायकी कार्य के माध्यम से वह लोकप्रिय हो रहा है। कहने के लिए यह 'शासन की शीर्षहीन शाखा' है लेकिन यह शाखा व्यवस्थापिका की वास्तविक इच्छाओं को पूर्ण करने का कार्य सम्पन्न करती है। यह असामाजिक तत्वों को मर्यादित करती है तथा कांग्रेस की मूल भावना को विकसित करने में सहायक होती है।

(4) **बोर्ड व्यवस्था के अनुरूप (Similar to Board System)** – प्रशासकीय व्यवस्था में कुशलता तथा विश्वसनीयता को लाने के लिए यह आवश्यक है कि व्यवस्था में एक व्यक्ति के स्थान पर कुछ व्यक्तियों को नियुक्त किया जाए। स्वतन्त्र नियमकीय आयोगों की व्यवस्था का दायित्व किसी एक व्यक्ति के ऊपर नहीं होता अपितु कुछ व्यक्तियों पर होता है। कुछ व्यक्तियों के ऊपर आश्रित होने के कारण ही इसे आयोग व्यवस्था की संज्ञा दी गई है। आयोग मण्डलीय व्यवस्था के अनुरूप अपना कार्य चलाते हैं। यह संयुक्त उत्तरदायित्व की भावना से कार्य करते हैं तथा अपना प्रतिवेदन कांग्रेस को संयुक्त रूप से प्रस्तुत करते हैं।

स्वतन्त्र नियामकीय आयोगों की स्थापना के कारण (Reasons for the establishment of Independent Regulatory Commissions) – अमेरिकी प्रशासकीय व्यवस्था में स्वतन्त्र नियामिकी आयोगों का एक विशिष्ट महत्व और योगदान है। यह किसी आकस्मिक भूल का परिणाम नहीं माना जा सकता। इसके निर्माण के पीछे एक निश्चित योजना है। सामान्य रूप से इसके निर्माण को निम्नलिखित कारणों से सम्बद्ध किया जा सकता है

(1) **प्रादेशिक तथा स्थानीय समस्याओं के कारण (Due to the Provincial and Local Problems)** – अमेरिका में राष्ट्रीय स्तर पर विविध प्रकार की कठिनाइयों और समस्याओं को देखा जा सकता है। वह विभिन्न समस्यायें अपने आप में एक कठिन समाधान रखती हैं। ऐसी स्थिति में स्थानीय प्रकृति की विविध

समस्यायों अछूती रह जाती हैं। स्वतन्त्र नियामिकी आयोगों में इस प्रकार की कठिनाई का समाधान करने की क्षमता भी है और सामर्थ्य भी। यह स्थानीय समस्याओं के समाधान में विशेष रूप से जागरूक रहते हैं। समस्याओं को रूचि के साथ सम्पन्न करने की प्रक्रिया ने इन्हें बहुत लोकप्रिय बना दिया है।

(2) **तकनीकी प्रकृति के आधार पर (On the basis of Technical Nature)** – प्रशासन को प्रत्येक क्षण एक–न–एक कार्य को सम्पन्न करना पड़ता है। यह कभी सामान्य प्रकृति के होते हैं और कभी विशेष प्रकृति के होते हैं। तकनीकी प्रकृति के कार्यों को कभी भी दक्षता, विशेष ज्ञान तथा तकनीकी प्रकृति की जानकारी के अभाव में सम्पन्न नहीं किया जा सकता। यह सभी आयोग इस दृष्टि से अपना विशेष महत्व रखते हैं कि यह विशेष तकनीकी प्रकृति के कार्यों को सरलता के साथ सम्पन्न कर सकते हैं।

(3) **स्वस्थ नियन्त्रण के लिए (For the Healthy Control)** – प्रशासकीय व्यवस्था को संविधान, राष्ट्रीय आवश्यकताओं, परम्परा के आधार पर विविध प्रकार के कार्य सम्पन्न करने पड़ते हैं। यह सभी कार्य उसे पर्याप्त रूप से शक्तिशाली बना देते हैं। कभी–कभी कार्यपालिका अपनी अबाधित सत्ता के कारण निरंकुश होने लगती है। यह निरंकुशता समाज के गतिशील विकास के लिए हानिकारक है। अबाधित निरंकुशता को नियन्त्रित करने के लिए इन आयोगों की स्थापना के कारण जनता जहां एक ओर न्याय के प्रति आवश्वस्त रहती है, वहीं दूसरी ओर वह प्रशासन को उचित और उपयोगी समर्थन देती है।

(4) **दलबन्दी के ऊपर (Above the Party Politics)** – अमेरिका का राष्ट्रपति अपने शासन को प्रतिष्ठा देने के साथ–साथ अपने दल को प्रतिष्ठा देते रहने के लिए सजग रहता है। इस सजगता का यह परिणाम होता है कि वह दलीय हितों के लिए अधिक कार्य करता है। अमेरिका का 'वाटरगेट काण्ड' इसी प्रकार की एक गतिविधि है। जिसमें निक्सन प्रशासन के सभी सर्वोच्च व्यक्ति सम्मिलित पाए गए।

ऐसी किसी भी दलबन्दी से मुक्ति पाने के लिए यह आवश्यक है कि स्वतंत्र नियामिकी आयोगों की रचना की जाए। यह आयोग अपन कार्यकाल, प्रकृति और प्रक्रिया के आधार पर दलबन्दी से ऊपर रहते हैं। यही कारण है कि यह स्वार्थ–भावना से मुक्त हैं और स्थानीय और प्रादेशित समस्याओं के समाधान को बिना किसी बाह्य दबाव के सम्पन्न कर लेते हैं।

5. **निष्पक्षता के आधार पर (On the basis of impartiality)** – प्रत्येक प्रशासन किसी–न–किसी प्रकार की राजनीति से अनुप्रेरित होता है। सरकार अपने कार्य से राजनैतिक प्रभावों को कम–से–कम करना चाहती है। यह आयोग निष्पक्षता और तटस्थता की आवश्यकता को पूरा करते हैं। इनकी निष्पक्षता का आधार इनका राष्ट्रपति से अधिक का कार्यकाल है तथा यह संसद से अपनी शक्ति प्राप्त करते हैं।

6. **प्रथम आयोग की सफलता के कारण (Due to the success of the First Commission)** – सन् 1883 तक अमेरिका में प्रशासकीय कार्य विभागों और उनकी अधीनस्थ इकाइयों के द्वारा सम्पन्न किये जाते रहे हैं। यह सभी राष्ट्रपति से शक्ति और आदेश प्राप्त करते हैं। सन् 1883 में प्रथम बार लोक सेवा आयोग (United States Civil Service Commission) की स्थापना हुई। यह राष्ट्रपति के आदेशों और निर्देशों के क्षेत्र से बाहर रहकर अपने कार्य सम्पन्न करती रही। इसके चार वर्ष बाद कांग्रेस ने अन्तर्राज्य व्यापार आयोग (Inter State Commerce Commission) की स्थापना की। इस आयोग को भी राष्ट्रपति के व्यावहारिक नियन्त्रण से मुक्त रहकर कार्य करने का अवसर प्राप्त हुआ। इन प्राथमिक आयोगों की सफलता के कारण अमेरिका में इनका प्रभाव और प्रभुत्व विशेष रूप से दिखाई देता है। भावी आयोगों की स्थापना के पीछे प्रथम और प्राथमिक आयोगों की सफलता एक मुख्य कारण बनी हुई है।

अमेरिका के प्रमुख आयोग (Important Commissons of U.S.A) – अमेरिका में 1883 में प्रथम आयोग की स्थापना और उसके चार वर्ष बाद अन्तर्राज्य व्यापार आयोग की स्थापना तथा सफलता ने अमेरिका में विभिन्न आयोगों की स्थापना के मार्ग को प्रशस्त किया। अमेरिका में प्रमुख आयोग निम्नलिखित है–

1. अन्तर्राज्यीय व्यापार तथा वाणिज्य आयोग (1887)
2. संघीय व्यापार आयोग (1914)
3. संघीय शक्ति आयोग
4. संघीय संचार आयोग (1934)
5. प्रतिभूति तथा विनिमय आयोग
6. तटकर आयोग (1936)
7. संघीय रिजर्व बोड्र
8. राष्ट्रीय श्रम बोर्ड
9. संघीय विद्युत आयोग
10. अणु शक्ति आयोग।

आयोग का विभिन्न अंगों से सम्बन्ध
Relationship of the Commission with different parts

सामान्य रूप से यह तथ्य स्वीकार किया जाता है कि यह आयोग स्वतन्त्र प्रकृति के होते हैं। इसी कारण इन्हें स्वतन्त्र आयोग कहा जाता है। लेकिन यह बात पूरी तरह से स्वीकार्य नहीं है क्योंकि आयोग अपनी स्थापना से लेकर अपने प्रतिवेदन प्रस्तुत करने की अवधि तक कहीं कार्यपालिका से, कहीं कांग्रेस से और कहीं सर्वोच्च न्यायालय से किसी–न–किसी रूप में सम्बद्ध हैं। इनकी सम्बद्धता इनके आश्रित होने की पद्धति का परिचायक नहीं है बल्कि इनके निकट सम्बन्धों की अनुभूति का द्योतक है। इनके विभिन्न अंगों से सम्बन्ध निम्नलिखित हैं–

(अ) **राष्ट्रपति से सम्बन्ध (Relationship with the President)** – इन स्वतन्त्र आयोगों को महत्वपूर्ण कार्य करने पड़ते हैं। यह किसी–न–किसी रूप में राष्ट्रपति से सम्बद्ध होते हैं। इनकी सम्बद्धता के निम्नलिखित आधार हैं

(1) आयोग के सदस्य राष्ट्रपति द्वारा नियुक्त होते हैं।
(2) राष्ट्रपति आयोग के सदस्यों की नियुक्ति को सीनेट द्वारा पास कराता है।
(3) राष्ट्रपति को सीमित आधार पर ही इन्हें पदमुक्त करने का अधिकार है। (बिना किसी स्पष्ट कारण के राष्ट्र इन्हें पदमुक्त नहीं कर सकते। राष्ट्रपति कांग्रेस की अनुमति से ही इन्हें पदमुक्त कर सकते हैं।

राष्ट्रपति क नियत्रण से मुक्त (Free from Presidential Control) – अमेरिका सवैधानिक व्यवस्था के अनुसार आयोगों की स्थापना तथा सदस्यों की नियक्ति का दायित्व राष्ट्रपति को वहन करना होता है। इस महत्वपूर्ण कार्य को सम्पन्न करने के बाद भी राष्ट्रपति इन्हें प्रत्यक्षतः अपने आदेश के दायरे में बन्द नहीं कर सकता। यह राष्ट्रपति के विभाग के रूप में कार्य नहीं करते। राष्ट्रपति इन पर अपना कड़ा नियन्त्रण स्थापित नहीं कर सकता। राष्ट्रपति नियंत्रण से मुक्ति के निम्नलिखित आधार है।

1. **कार्यकाल के आधार पर (On the basis of the tenure)** – अमेरिका में राष्ट्रपति 4 वर्ष के लिये निर्वाचित होता है। यदि एक ही व्यक्ति दूसरी बार भी राष्ट्रपति बने तब उसका कार्यकाल 8 वर्ष का होता है। इन आयोगों का कार्यकाल 7 वर्ष से लेकर 14 वर्षों तक का है। इसी तरह 14 वर्षों के लिए नियुक्त होने वाले आयोग सदस्य राष्ट्रपति के बन्धन से मुक्त होते हैं।

(2) **पद मुक्त करने का सीमित अधिकार (Limited right of termination)** – अमेरिका का राष्ट्रपति अधिक शक्तियाँ रखता है। वह आयोग के क्षेत्र को भी प्रभावित करता है। वह आयोग के सदस्यों की नियुक्ति करता है लेकिन किसी भी स्थिति में इनके सदस्यों को स्वेच्छा के आधार पर पदमुक्त नहीं कर सकता। इनकी पदमुक्ति के लिए स्पष्ट कारण बताने की आवश्यकता होती है। तथा उस पद मुक्ति का समर्थन कांग्रेस से होना आवश्यक है। सर्वोच्च न्यायालय भी इन्हें संरक्षण प्रदान करती है।

3. **निर्णय अपरिवर्तनीय (Decision unchange)** – राष्ट्रपति को कार्यपालिका सम्बन्धी व्यापक अधिकार प्राप्त है। आयोग अपने क्षेत्र में किसी बाह्य सत्ता के हस्तक्षेप को बर्दाश्त नहीं करता। राष्ट्रपति को यह शक्ति नहीं होती कि वह आयोग के निर्णय में किसी प्रकार भी परिवर्तन कर सके। वह उन्हें रदद करने की स्थिति में भी नहीं होता। इन आयोगों के निर्णय अन्तिम और मान्य होते हैं। इनमें राष्ट्रपति किसी प्रकार का भी परिवर्तन नहीं ला सकता। इनके प्रतिवेदन संसद की धरोहर हैं इसलिए राष्ट्रपति का इनसे कोई भी सम्बन्ध नहीं होता।

(4) **नीति निर्धारण में स्वतन्त्र (Free in forming the policy)** – यह आयोग विवादों को सुलझाने, प्रक्रिया को अपनाने तथा किसी भी विशेष खोज को सम्पन्न करने के लिए अपनी नीति का निर्माण स्वतन्त्रतापूर्वक कर सकते है। उनमें किसी का कहीं का हस्तक्षेप सम्भव नहीं है।

(5) **कांग्रेस से सम्बन्ध (Relationship with the Congress)** – अमेरिका की कांग्रेस व्यवस्थापन के क्षेत्र में सर्वोच्च शक्तियों को वहन करने वाली अन्तिम और मान्य संस्था है। कार्यपालिका प्रशासकीय क्षेत्रों में कार्य करने वाली एक सुदृढ़ इकाई है। इस इकाई का प्रतिनिधित्व राष्ट्रपति करता है। राष्ट्रपति की शक्तियों को मर्यादित करने के लिए व्यवस्थापिका अपना प्रभावशाली नियन्त्रण स्थापित करती है। कांग्रेस का आयोगों की स्थापना से लेकर प्रतिवेदन प्राप्त करने तक की स्थिति में बहुत सजीव सम्बन्ध बना रहता है। इस सम्बन्ध का व्यावहारिक रूप निम्नलिखित है

(1) आयोगों का जन्म कांग्रेस (संसद) की विशेष विधि द्वारा होता है। अमेरिका में यह व्यवस्था है कि प्रत्येक आयोग की स्थापना के लिए कांग्रेस इस आशय की एक विधि पारित करती है। यह विधि ही इसके निर्माण की आवश्यक सुविधा जुटाती है।

(2) कांग्रेस को प्राप्त शक्ति का मूल स्रोत संसद है।

(3) कांग्रेस (संसद) अपने विशेष विधि व्यवस्था के आधार पर इन्हें समाप्त कर सकती है।

(4) कांग्रेस इनकी शक्तियों में कमी अथवा वृद्धि कर सकती है।

(5) कांग्रेस इनके सुचारू रूप से कार्य करने के लिए धन की व्यवस्था करती है।

(6) आयोग अपने प्रत्येक कार्य के लिए कांग्रेस के प्रति उत्तरदायी होते हैं।

(7) आयोग अपने प्रतिवेदन कांग्रेस को प्रस्तुत करते हैं।

(स) **न्यायपालिका से सम्बन्ध (Relationship with Judiciary)** – इन आयोगों की स्थापना के पीछे मूल तत्व और प्रेरणा सामाजिक जीवन को व्यवस्थित करने की रही है। यह न्यायपालिका पर आश्रित न होने के बाद भी अर्ध न्यायिक प्रकृति का आधार प्रस्तुत करने के कारण न्यायपालिका से निम्नलिखित दृष्टि से सम्बन्ध रखते हैं

(1) न्यायपालिका की प्रकृति के अनरूप यह आयोग भी व्यवस्था का (जिसकी रचना आयोगों ने स्वयं की है) उल्लघन करने पर दण्ड देने की स्थिति में है।

(2) आयोग के निर्णय सर्वोच्च न्यायालय के विचारार्थ स्वीकार किये जाते है।

(3) सर्वोच्च न्यायालय आयोग के निर्णयों में परिवर्तन कर सकती है स्वीकार कर सकती है अथवा समाप्त कर सकता है।

(4) आयोग के सदस्यों को न्यायिक संरक्षण प्राप्त होता है।

आयोग के कार्य (Functions of the Commiccion) – आयोग की स्थापना और सफलता के बीच इतना अधिक समीप्य दिखाई देता है कि प्रत्येक दृष्टि से आयोगों के कार्यो की समीक्षा करना आवश्यक अनुभव होता है। आयोग के निम्नलिखित कार्य सम्पन्न करते हैं

(1) **कार्यपालिका की शक्तियों को सीमित करना (To check the powers of the executive)** – अमेरिका में शक्ति पृथक्करण का सिद्धांत विशेष रूप में अपनाया गया है। यह सिद्धांत सरकार के तीनों अंगों को पृथक–पृथक शक्तियाँ प्रदान करता है। शाक्तयों का केन्द्र मुख्य रूप से कार्यपालिका को ही माना गया है। वास्तव में यदि कार्यपालिका शक्ति बहुत अबाधित हो जाए तब उसका स्वरूप निरंकुशता की ओर उन्मुख होगा। यह राष्ट्र के लिए सर्वथा अहितकर होगा। आयोग मुख्य रूप स अर्ध प्रशासकीय प्रकृति के कार्य सम्पन्न करने के कारण कार्यपालिका की संभावित अबाधित शक्ति को एक प्रकार से प्रतिबन्धित करते हैं।

(2) **सामाजिक जीवन को व्यवस्थित करना (To regulate the social life)** – आयोगों की स्थापना के पीछे मुख्य विचार सरकार के बढ़ते हुए बोझ को कम करने के साथ–साथ शक्तियों को विकेन्द्रित करना है। समाजिक जीवन में व्याप्त असन्तोष और असामाजिक प्रवृत्तियों को समाप्त करने के लिए यह आयोग विशेष रूप से प्रयत्नशील होते हैं। सामाजिक जीवन के असामाजिक तत्वों पर प्रतिबन्ध लगाकर यह आर्थिक, व्यापारिक, औद्योगिक तथा सामाजिक हितों की पूर्ति करते हैं।

(3) **व्यक्तिगत सम्पत्ति और आर्थिक शक्तियों को व्यवस्थित करना (To regulate the personal property and economic forces)** – सामाजिक जीवन में असन्तोष और विद्रोह के प्रभाव का मुख्य आधार धन का असमान वितरण है। यह आयोग अवैधानिक साधनों से अर्जित सम्पत्ति और साधनों को प्रतिबंधित करने का कार्य सम्पन्न करते हैं। राष्ट्रीय जीवन को होने वाले संभावित खतरों को रोकने के महत्वपूर्ण कार्य सम्पन्न करके यह राष्ट्रीय जीवन को व्यवस्थित रखने का कार्य सम्पन्न करते है।

(4) **औद्योगिक क्रान्ति के दोषों को प्रतिबन्धित करने के लिए (To check the defects of industrial revolution)** – औद्योगिक विकास जिस तीव्रता से राष्ट्रों के जीवन को विकसित करने का कार्य सम्पन्न करता है उतना ही वह कहीं न कहीं कुछ दोष छोड़ता चला जाता है। यह असमानता को बहुत सीमा तक प्रोत्साहित करता है। यह असमानता व्यक्तियों तक ही सीमित नहीं होती बल्कि क्षेत्रों तथा प्रदेशों तक फैली होती है। इस असमानता तथा ऐसी ही कुछ अन्य दोषपूर्ण व्यवस्था और पद्धति को प्रतिबंधित करने के लिए आयोग सदैव कार्य करते रहते हैं।

आयोग व्यवस्था के दोष अथवा आलोचनायें

Defects or the Criticism of Commission System

यह आयोग व्यवस्था अपने में कुछ दोष समाहित किये हुए है। डॉ० एल० डी० व्हाईट के अनुसार इस व्यवस्था की सामान्य आलोचनाएँ निम्न हैं

1. इसकी स्वतन्त्रता मुख्य रूप से मुख्य कार्यपालिका की संवैधानिक शक्तियों के लिए एक चुनौती है। ये ऐसे महत्वपूर्ण स्थान पर बैठे हुए हैं कि राष्ट्रपति के निर्देश और उत्तरदायित्व से ऊपर हैं।
2. इन्हें पूर्ण नियन्त्रित करने से इनकी अर्धन्यायिक प्रकृति तथा निष्पक्षता प्रभावित होती है।
3. यदि इन्हें स्वतन्त्र छोड़ा जाता है तब समस्त संगठनात्मक व्यवस्था में अनुत्तरदायित्व के तत्व प्रवेश कर जाते हैं।
4. समय–समय पर राष्ट्रपति की स्थिति को देखते हुए इनकी शक्तियों में कटौती की जाती रही हैं क्योंकि इन्हें यदि अधिक शक्तियाँ दी जाती हैं तब राष्ट्रपति की स्थिति बहुत कमजोर हो जाती है।

आयोग की सामान्य आलोचनाएँ व्यवस्थित रूप से निम्नलिखित हैं

1. **नियन्त्रण के आधार पर (On the basis of the control)** – सामान्य रूप से यह स्वीकार किया जाता है कि स्वतन्त्र नियामिकी आयोग किसी के प्रति प्रत्यक्षतः उत्तरदायी नहीं है। वह राष्ट्रपति के नियन्त्रण से सर्वथा मुक्त है। राष्ट्रपति इन्हे पद मुक्त करने का सीमित अधिकार रखता है। इसी आधार पर इन्हें कभी–कभी अनुत्तरदायी आयोग की संज्ञा दी जाती है। यह प्रकृति और व्यवस्था के नाम पर अधिकाधिक नियन्त्रण से मुक्ति प्राप्त करने को उत्सुक रहते है। इससे इनमें अधिक अनुत्तरदायित्व की भावना घर करती है।

2. **कार्यों की विभिन्नता के आधार पर (On the basis of difference of work)** – इन आयोगों की मिश्रित प्रकृति होती है। यह अन्य कामों को सम्पन करने के साथ–साथ आर्थिक जीवन को नियन्त्रित करने का कार्य सम्पन्न करते हैं। इनकी कार्य विषयक रूचि इतनी भिन्न और व्यापक होती है कि इन्हें समझना कभी–कभी बहुत कठिन हो जाता है। इसके अतिरिक्त इन आयोगों का झुकाव प्रशासन में विकेन्द्रीकरण और अव्यवस्था पैदा करने वाला होता है।

(3) **यह न्याय की निष्पक्षता में जनविश्वास को कमजोर करते हैं (They weaken public confidence in judicial fairness)** – आयोगों की अर्धन्यायिक प्रकृति का स्वरूप सर्वथा आलोचना के क्षेत्र से मुक्त नहीं है। जब न्यायिक कार्य आयोगों को दिये जाते हैं इसका प्रभाव यह होता है कि जनता न्यायपालिका की निष्पक्षता में संदेह करने लगती है।

(4) **समायोजन का अभाव (Lack of Coordination)** – स्वतंत्र नियामिकी आयोगों की स्थापना में स्वतंत्र वातावरण के साथ–साथ निष्पक्ष कार्य को सम्पन्न करने की प्रबल आकांक्षा दिखाई देती है। यह जिस कार्य को सम्पन्न करते हैं उसकी प्रक्रिया निर्माण का दायित्व स्वयं इन आयोगों का है। यह आयोग कभी–कभी ऐसे कार्य सम्पन्न करते हैं जो मुख्य कार्यपालिका, कांग्रेस अथवा न्याय संगठनों को रूचिकर नहीं लगते। इस तरह की स्थिति में तनाव की स्थिति का जन्म होता है और किसी भी व्यक्ति अथवा व्यवस्था के साथ समझौते नहीं होते। इससे कहीं भी समन्वय या समायोजन का कार्य पूर्ण नहीं हो पाता।

(5) **नागरिक स्वतन्त्रता के लिए चुनौती (Challenge to the Civil Liberty)** – आयोग की प्रकृति और कार्य करने के स्वरूप से नागरिकों की स्वतंत्रता पर कुठाराघात दिखाई देता है। कानून बनाने के अधिकार का कांग्रेस से पृथक् किया जाना नागरिक स्वतन्त्रता के लिए किसी रूप में भी उपयुक्त दिखाई नहीं देता। इन आयोगों को दण्ड देने का अधिकार दिया गया है लेकिन इनके पास इतनी निष्पक्षता नहीं होती जितनी किसी भी दण्ड देने वाली व्यवस्था की होती है। न्याय की निष्पक्षता का स्वरूप भी इसमे अधिक स्पष्ट दिखाई नहीं देता। इनकी निष्पक्षता बाह्य दबाव में आकर समाप्त हो जाती है।

(6) अपव्यय और अतिव्यय (Wastage and eÛcess expenditure) – आयोग की स्थापना का उद्देश्य सामाजिक जीवन को व्यवस्थित करना है। यही कार्य प्रत्येक देश में प्रत्येक सरकार सम्पन्न करती है। इस प्रकार इस व्यवस्था पर जितना व्यय होता है उसे दोहरा व्यय कहा जा सकता है। यह अति व्यय का एक रूप है।

(7) **नियुक्ति में पक्षपात (Favouratism in appointment)** – यह आयोग अपने निष्पक्षता के लिए लोकप्रिय है। लेकिन यह एक स्पष्ट सी बात है कि राष्ट्रपति को जब नियुक्ति करने का अधिकार दिया गया है तब यह कैसे संभव हो सकता है कि वह अपने समर्थकों को इसमें नियुक्त न करे। आयोग में प्रत्येक सदस्य की नियुक्ति का आधार पक्षपातपूर्ण होता है।

सुझाव

Suggestions

सन् 1949 मे हूबर आयोग ने इन्हें अधिक निष्पक्ष और तटस्थ बनाने के लिए निम्न सुझाव दिये–

1. वर्तमान अभिकरणों का एकीकरण।
2. चैयरमेन की शक्तियों में विकास।
3. अधिक वेतन दिया जाए
4. स्टाफ विशेषकों को विस्तृत शक्तियां दी जायें।
5. आयोग के सदस्यों को सरलता से मुक्त न किया जाए।
6. प्रशासकीय विभागों से इसका निकट का सम्बन्ध होना चाहिए।

भारत में नियामिक आयोग

I. R. C. in India

भारत में इस प्रणाली को सामान्य अर्थ और व्यवस्था देने के लिए विकसित किया गया लेकिन अमेरिका की तरह इन्हें पूर्ण स्वतन्त्र नहीं रखा जा सका। चुनाव आयोग, लोक सेवा आयोग, वित्त आयोग तथा विश्वविद्यालय अनुदान आयोग की स्थापना इसी दृष्टि को लेकर की गई है। इन आयोगों की स्थापना का उल्लेख संविधान में है। सामान्य नियुक्तियों की निम्न प्रक्रिया है–

1. संविधान द्वारा
2. ससंद की विशेष विधि द्वारा
3. कार्यपालिका द्वारा

आयोग के सदस्य राष्ट्रपति द्वारा नियुक्त किये जाते हैं यह विभागीय प्रबन्ध के नियन्त्रण से मुक्त है। इन आयोगों की स्थापना, प्रकृति स्वरूप और कार्य अमेरिकी आयोगों से सर्वथा भिन्न हैं।

महत्वपूर्ण प्रश्न

1. स्वतन्त्र नियामिकी आयोग से आप क्या समझते हैं? इनकी मुख्य–मुख्य विशेषताओं का उल्लेख कीजिए।
2. स्वतंत्र नियामिकी आयोग की स्थापना के कारणों का उल्लेख कीजिए।
3. स्वतंत्र नियामिकी आयोग का अमेरिकी राष्ट्रपति, कांग्रेस तथा न्याय संगठन से क्या सम्बन्ध हैं?
4. स्वतंत्र नियामिकी आयोग की प्रमुख आलोनााओं का उल्लेख कीजिए।

अध्याय - 10

स्टाफ तथा सूत्र अभिकरण

Staff and Line Agencies

भूमिका

लोक प्रशासन के किसी दृष्टिकोण ने इतनी कठिनाई उत्पन्न नहीं कि जितनी कठिनाई सूत्र और स्टाफ अभिकरण ने की है। यह अस्पष्टता इस तथ्य को जानने से अधिक उलझ गई है कि स्टाफ क्या है?"

–जे एम पिफनर

"स्टाफ कार्यपालिका के विस्तृत व्यक्तित्व की छाया है। इसका अर्थ है अधिक आँखें, अधिक कान, और अधिक हाथ जो योजना बनाने में सहायता करे।"

– मूने

'स्टाफ' तथा 'सूत्र दोनों शब्द सैनिक संगठन (Military Organisation) से लिए गए हैं। सेना में दो प्रकार की इकाइयां (Units) होती हैं, सूत्र इकाई (Line Unit) तथा स्टाफ इकाई (Staff Unit) सूत्र अधिकारी (Line Officers) सेना को युद्ध स्थल में कमाण्ड करते हैं, अर्थात् वह सेना को आदेश देते तथा उसका संचालन करते हैं। सूत्र इकाइयों का कार्य संगठन का मुख्य उद्देश्य अर्थात् युद्ध में विजय प्राप्त करना होता है और वह ही लड़ाई का वास्तविक कार्य करती है। परन्तु युद्ध भूमि में सेनाओ को भोजन, दवाइयां, अस्त्र–शस्त्र तथा गोला–बारूद आदि भी पहुंचना अति आवश्यक होता है। यह कार्य सेना की स्टाफ इकायों द्वारा सम्पन्न किया जाता है। इस प्रकार स्टाफ इकाइयां स्वयं नहीं लड़ती बल्कि ये युद्ध की योजना बनाती हैं। लड़ने वाली विभिन्न इकाइयों में समन्वय स्थापित करती हैं तथा सैनिकों की सहायता करती हैं ताकि वह अपने उद्देश्य की प्राप्ति सफलतापूर्वक कर सकें।

लोक प्रशासन में स्टाफ तथा सूत्र एजेंसियों का अर्थ सैनिक प्रशासन में इनके अर्थ को ध्यान में रखकर ही किया जाता है। लोक प्रशासन में मुख्य कार्यपालिक को विभिन्न प्रकार के कार्य करने पड़ते हैं तथा दिन–प्रतिदिन उसके क्षेत्राधिकार में प्रसार हो रहा है। इसलिए मुख्य कार्यपालिका बिना सहायता के अपने कार्यों का सम्पादन नहीं कर सकता। उसको विशेषज्ञ तथा तकनीकी परामर्श और सहायता की आवश्यकता होती है। व्यवहार में उसे यह सहायता उन अंगों से प्राप्त होती है जो उससे संलग्न होते हैं। उसे बहुत से कार्य उन अंगों को सौंप दिये जाते हैं, परन्तु प्रशासन पर पर्यवेक्षण तथा नियन्त्रण रखने तथा निर्देशन करने का उत्तरदायित्व उसके पास ही रहता है। मुख्य कार्यपालिका से संलग्न प्रशासकीय आधिकारियों को जिन्हें उसकी सत्ता प्रदत की जाती है, स्टाफ कहते हैं। इस प्रकार ऐसी एजेंसियों जो मुख्य कार्यपालिक को परामर्श देती हैं, उन्हें स्टाफ एजेंसियां कहा जाता है। स्टाफ से तात्पर्य है, कि जिस पर निर्भर रहा जा सके अथवा जिसके सहयोग से कठिनाइयों के बीच मार्ग ढूंढ़ा जा सके। जिस प्रकार एक छड़ी मनुष्य को चलने में सहायता देती है, उसी प्रकार स्टाफ इकाइयां विशिष्ट जानकारी तथा विवेकपूर्ण परामर्श प्रदान कर मुख्य कार्यपालिक की सहायता करती है। स्टाफ एक परामर्श देने वाला अंग है, इस पर किसी भी प्रकार का संचालन करने का उत्तरदायित्व नहीं होता।

स्टाफ अभिकरण–स्टाफ तथा सूत्र शब्द सैनिक संगठन से लिए गए हैं। समस्त देशों में सैनिक संगठनों में दो प्रकार की इकाईयाँ होती हैं। प्रथम इकाई को लाइन या सत्र कहते हैं। इसका प्रमख कार्य यद्ध करने का होता है। दसरी इकाई स्टाफ है। इसका प्रयोग लाठी के अर्थों में किया जाता है। जिस प्रकार लाठी व्यक्ति को चलने में सहारा देती है उसी प्रकार यह स्टाफ सेना को लड़ने में सहायता प्रदान करता है।

सेना में युद्ध करने वाले अंग को आवश्यक युद्ध–सामग्री, राशन आदि की व्यवस्था करने वाली, आहत सैनिकों की चिकित्सा करने वाली सेवाओं की आवश्यकता होती है। इन सेवाओं को करने वाले व्यक्तियों को स्टाफ कहते हैं। असैनिक अथवा सिविल सेवकों में स्टाफ अभिकरण से तात्पर्य अधिकारियों के उस समूह से है जो योजना, संगठन निर्देशन समन्वग नियन्त्रण आदि में मुख्य कार्यपालिका या अन्य प्रधान कार्यपालिका अधिकारियों को सहायता पहुंचाते हैं। एम. मार्क्स के शब्दों में– ''स्टाफ केवल सूत्र अभिकरण के लिए सामग्री तैयार करता है जिससे वह निष्पादन कर सकें। वह अपने आदेश स्वयं प्रसारित नहीं करता।"

इलियट डनलप स्मिथ के अनुसार– स्टाफ सामान्य रूप से सूत्र अभिकरण के साथ रहकर सहायता करता है, लेकिन वह सूत्र अभिकरण की सत्ता और उत्तरदायित्व का कभी उल्लंघन नहीं करता।

स्टाफ अभिकरण के विभिन्न प्रकार (Types of Staff Agency) पिफनर ने स्टाफ अभिकरण को तीन भागों में बांटा है–

(1) सामान्य स्टाफ

(2) प्राविधिक स्टाफ

(3) सहायक स्टाफ

(1) **सामान्य स्टाफ (General Staff)**– सामान्य स्टाफ मुख्य निष्पादक तथा उच्च प्रशासकीय अधिकारियों को परामर्श देने, सूचनाओं को एकत्रित करने तथा अनसंधान में सहायता पहुंचाने का कार्य करता है। वह समस्त मामलों एवं उससे सम्बन्धित कागजों का अध्ययन करके केवल महत्वपूर्ण मामलों को ही प्रमुख अधिकारी के पास पहुंचने देता है। पिफनर के शब्दों में–– "सामान्य स्टाफ का प्रमुख कार्य मुख्य कार्यपालिका अथवा विभागाध्यक्ष के लिए फिल्टर और फनल का कार्य करना किसी गहन जानकारी में बिना लिप्त हुए महत्वपूर्ण विषयों को नियमित करना है।"

(2) **प्राविधिक स्टाफ (Technical Staff)**–नुख्य निष्पादक को प्रशासकीय कार्यों के लिए तकनीकी परामर्श की आवश्यकता होती है। इसके लिए तकनीकी स्टाफ होता है। उदाहरणार्थ डाक्टर चिकित्सा सम्बन्धी प्रश्नों पर इन्जीनियर अपनी विशेष शाखा की तकनीकी के प्रश्नों पर परामर्श देता है।

(3) **सहायक स्टाफ (Auxilliary Staff)** –प्रशासन को अपना कार्य सम्पन्न करने के लिए कितनी ही सहायक क्रियाएँ करनी पड़ती है। सहायक क्रियाओं को सम्पन्न करने वाली इकाईयों को सहायक स्टाफ में सम्मिलित किया जाता है। जब किसी नए विभाग की स्थापना की जाती है तो उसके लिए भवन, सामग्री के प्रबन्ध करने के साथ ही कर्मचारी वर्ग की आवश्यकता होती है। सहायक स्टाफ जिन क्रियाओं को सम्पन्न करता है उन्हें विलोबी ने संस्थागत अथवा गृह क्रियाओं की संज्ञा दी है।

पिफनर के शब्दों में "सहायक स्टाफ क्रियायें ऐसी गृह रक्षक क्रियायें हैं जो प्रत्येक विभाग में सामान्य उद्देश्य की प्राप्ति के लिए होती है।

स्टाफ के कार्य (Functions of the Staff) – मूने ने स्टाफ द्वारा किये जाने वाले कार्यों को तीन भागों में विभाजित किया है

(1) सूचना सम्बन्धी––इसका तात्पर्य है मुख्य अधिकारी के लिए समस्त प्रकार की सूचनाओं को एकत्रित करना जिससे उसे अपना कार्य करने में सहायता मिल सके।

(2) परामर्श सम्बन्धी–मुख्य अधिकारी के सम्मुख जो समस्याएँ उत्पन्न होती हैं उनके समाधान के लिए स्टाफ अपना बहुमूल्य परामर्श देता है। इस परामर्श को मानना अथवा न मानना मुख्य अधिकारी की इच्छा पर निर्भर करता है।

(3) पर्यवेक्षण सम्बन्धी–स्टाफ इस बात की देखभाल करता है कि मुख्य अधिकारी द्वारा किए गए निर्णय अधीनस्थ अधिकारियों के पास पहुंच रहे हैं अथवा नहीं। उन्हें कार्यरूप में परिणित करने के लिए यदि कोई कठिनाई होती है तो उसका निराकरण स्टाफ द्वारा किया जाता है।

एल.डी. व्हाइट ने स्टाफ के निम्नलिखित कार्य बताए है

(1) इस बात का निश्चय करना कि मुख्य अधिकारी को समस्त सूचनाएँ सही ढंग से दी जा रही है।

(2) भावी कार्यक्रमों की योजना बनाने में सहायता देना।

(3) प्रधान अधिकारी जिस विषय में निर्णय लेने वाला है उसके सम्बद्ध में उसे समस्त जानकारी उपलब्ध कराना।

(4) छोटी–छोटी समस्याओं को स्वयं हल करना, केवल अत्यंत महत्वपूर्ण मामले मुख्य अधिकारी के पास भेजना।

(5) मुख्य अधिकारी के समय की बचत करना।

(6) इस बात की व्यवस्था करना कि अधीनस्थ अधिकारी निर्धारित नीति के अनुसार ही कार्य करें।

सूत्र अभिकरण

Line Agencies

विलोबी का मत है कि प्रशासकीय कार्यों को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है– (1) प्राथमिक या कार्यात्मक (2) संस्थागत या गृह पालक क्रियाएँ। प्राथमिक क्रियायें वे हैं जो उस प्रमुख लक्ष्य की प्राप्ति के लिये की जाती हैं जिसे प्राप्त करना उस संगठन का उद्देश्य है। गृह पालक या संस्थागत क्रियायें इसलिए की जाती हैं ताकि एक सेवा के रूप में बनी रहें तथा कार्य करती रहें ।

सूत्र वस्तुतः वह संगठन है जो प्रशासन के मुख्य उद्देश्यों की पूर्ति करता है। सूत्र अभिकरण का सम्बन्ध नीति के निर्माण से हाता है। उसके हाथ में निर्णय लेने की शक्ति होती है।

पिफनर के शब्दों में––"सूत्र का अर्थ उस निष्पादक अधिकारियों, कर्मचारियों से है जो पद–सोपन में प्रत्यक्ष रूप से आदेश देने वाली श्रेणी में खड़े रहते हैं। यह उन लोगो में से हैं जो आदेश देने वाले इकाई के रूप में माने जाते हैं तथा जो कार्यात्मक उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए कार्य करते हैं।"

सूत्र एजेंसियों के प्रकार

Kinds of Line Agencies

सूत्र एजेंसियों निम्नलिखित तीन प्रकार की होती हैं

1. विभाग (Department)
2. लोक निगम (Public Corporation)
3. स्वतन्त्र नियामक आयोग (Independent Regulatory Commission)

1. **विभाग (Department)** –प्रमुख कार्यकारी के अधीन रहने वाले समस्त सरकारी कार्य को अनेक खंडों में विभाजित कर लिया जाता है। इनमें प्रत्येक खंड को विभाग कहा जाता है। विभाग संगठन का सबसे बड़ा तथा अधिक प्रचलित स्वरूप है। यह सीधा ही मुख्य कार्यपालिका (Chief Executive) के अधीन होता है। यह स्पष्ट रूप से कमान की इकहरी श्रृंखला (Single Chain of Command) के साथ जुड़ा होता है। इस प्रकार विभाग प्रशासकीय पद–सोपान (Administrative Hierarchy) में सबसे बड़ी तथा उच्चतम इकाई है। प्रत्येक सरकार का अधिकतम कार्य विभागीय प्रणाली के अन्तर्गत ही चलाया जाता है ! प्रतिरक्षा, शिक्षा, स्वास्थ्य, श्रम, गृह, कृषि, रेल, डाक व तार तथा वित्त आदि सरकार के प्रमुख विभाग होते हैं।

2. **लोक निगम (Public Corporation)** –लोक निगम एक नया संगटन साधन है जो लोक प्रशासन में निजी प्रशासन से लिया गया है। लोक निगम व्यावसायिक तथा वाणिज्यिक क्षेत्रों में राज्य के प्रवेश का परिणाम है। प्रत्येक लोक निगम का एक निर्देशक मण्डल (Board of Directors) होता है, जो इस की नीतियों को बनता है और एक जनरल मैनेजर (General Manager) निगम के आन्तरिक प्रशासन को चलाता है। यह निगन–निकाय (Body Corporate) होती है जो अपने नाम पर सम्पत्ति एवं नकदी (Cash) रखती है। इसको विशाल वित्तीय तथा प्रशासकीय स्वायत्तता (Financial and Administration Autonomy) प्राप्त होती है, परन्तु यह सरकारी नियन्त्रण से पूर्णयता मुक्त नहीं होती है। लोक निगम प्रणाली का प्रयोग उस समय किया जाता है जब सरकार उद्योग, व्यापार एवं वाणिज्य के क्षेत्रों में स्वयं प्रवेश करना चाहता हो। आधुनिक काल में सरकार इन क्षेत्रों में प्रवेश कर चुकी हैं इसलिए लोक निगम, लोग प्रशासन का नहत्वपूर्ण अंग बन चुके हैं। भारतीय खाद्य निगम (Food Corporation of India), जीवन बीमा निगम (Life Insurance Corporation), इंडियन एयर लाइंस निगम (Indian Air Lines Corporation) एयर इंडिया (Air India), भारतीय उद्योग निगम केन्द्रीय भण्डारागार निगम (Central Warehousing Corporation), राजकीय व्यापार निगम (State Trading Corporation) इत्यादि भारत के कुछ प्रमुख लोक निगम हैं।

3. **स्वतन्त्र नियामिकी आयोग (Independent Regulatory Commission)** – सूत्र एजेंसियों की तीसरी प्रकार स्वतन्त्र नियानिकी आयोग कहलाती है। इसमें कुछ लक्षण विभागी प्रणाली के तथा कुछ लक्षण लोग निगम प्रणाली के होते हैं। शीर्ष पर इसका स्वरूप निगम जैसा परन्तु आन्तरिक कार्य–संचालन विभागीय ढांचे जैसा होता है। ये आयोग मुख्य कार्यकारी के नियन्त्रण से प्रायः मुक्त होते हैं। इनकी उपस्थिति प्रशासन को विश्रृंखल (Disintegrated) स्वरूप प्रदान करती है। यह प्रशासकीय, अर्द्ध–विधायी (Semi-Legislative) तथा अर्द्ध–न्यायिक (Semi-Judicial) प्रकृति के कार्य करते हैं। संयुक्त राज्य अमेरिका में यह बहुत प्रचलित है तथा सरकारी प्रशासन का महत्त्वपूर्ण अंग माने जाते हैं।

स्टाफ तथा सूत्र अभिकरणों में अन्तर

Difference between Staff and Line Agencies

लोक प्रशासन में सूत्र और स्टाफ अभिकरण के अन्तर पर जब हम विचार करते हैं तो हमें ये एक दूसरे से इस प्रकार गूध हुए लगते हैं कि इनमें अन्तर खोजना कठिन है। पाल. एच. एपलबी का मत है कि ये दोनों अभिकरण इतने घुल मिल गए हैं कि इनमें अन्तर खोजना बहुत कठिन है। लाईन अभिकरण कभी स्टाफ अभिकरण का कार्य करता है और कभी स्टाफ अभिकरण सूत्र अभिकरण से अधिक शक्तिशाली दिखाई देता है। इन दोनों के मध्य अन्तर निम्नलिखित हैं–

(1) सूत्र अभिकरण अपने निर्धारित उद्देश्यों को पूरा करते हैं तथा अपने आप में साध्य हैं। जबकि स्टाफ सूत्र अभिकरण की सहायता के लिए होता है। अतः यह साध्य न होकर साधन मात्र है।

(2) सूत्र संगठन के समस्त अधिकारी पदसोपान क्रम में संगठित होते हैं। प्रत्येक अधिकारी अपने उच्च अधिकारी से आदेश ग्रहण करता है तथा उसके प्रति उत्तरदायी होता है। किन्तु स्टाफ़ में यह स्थिति नहीं होती।

(3) स्टाफ का कार्य योजनायें बनाना, नवीन अनुसन्धान करना है। सूत्र का कार्य इन योजनाओं के अनुसार कार्य करना है।

(4) सूत्र अभिकरण लोगों के सम्पर्क में सीधे आते हैं जबकि स्टाफ एजेन्सियाँ पर्दे के पीछे कार्य करती हैं।

(5) सूत्र अभिकरण अधीनस्थ कर्मचारियों को आदेश देते हैं जबकि रूटाफ एजेन्सियों को कोई ऐसी शक्तियाँ प्राप्त नहीं होती। वे केवल मुख्य कार्यपालिका अधिकारी को परामर्श दे सकती हैं जिसे मानना या न मानना उसकी इच्छा पर निर्भर होता है।

(6) सूत्र अभिकरण को सत्ता प्राप्त होती है जिसके माध्यम से वह अधीनस्थ कर्मचारियों पर नियन्त्रण स्थापित करते हैं। स्टाफ के पास कोई सत्ता नहीं होती तथापि उसका प्रभाव होता है।

स्टाफ तथा सूत्र एजेंसियों में उपरोक्त अन्त के होते हुए भी व्यवहार में उनमें अन्तर करना बहुत कठिन है। आपस में इस जटिल ढंग से मिली हुई हैं कि उनमें भेद नहीं किया जा सकता। इनके बीच विभाजन की रेखा खींचना अते कठिन कार्य हैं। व्यावहारिक रूप में स्टाफ तथा सूत्र दोनों के ही कार्य किसी एक व्यक्ति अथवा व्यक्तियों के एक समूह को सौंपे जा सकते हैं। छोटे संगठन में यह कार्य एक व्यक्ति द्वारा को निभाये जाते हैं। वास्तव में सूत्र तथा स्टाफ एजेंसियों के बीच का अन्तर बहुत कुछ सापेक्ष है, निरपेक्ष नहीं। जब हम किसी एजेंसी को सूत्र अथवा स्टाफ में वर्गीकृत करते हैं, तो हमारा अभिप्राय यही होता है कि सम्बन्धित एजेंसी का कार्य मुख्य रूप से उस प्रकार का है जिस वर्ग के अन्तर्गत हमने उसे रखा है। कायों का पूर्ण पृथक्करण करना व्यावहारिक रूप से असम्भव है। उदाहरण के तौर पर किसी विभाग का सचिव अपने मंत्री के साथ सम्बन्ध के पक्ष से स्टाफ अधिकारी होता है, परन्तु विभागीय पद–सपा के पक्ष से वह सूत्र अधिकारी कहलाता है। इस प्रकार कार्य पूर्ति के लिए वह सूत्र एजेंसी का अंग बन जाती है। अतः हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि स्टाफ तथा सूत्र एजेंसियों में अन्तर होते हुए भी वे एक–दूसरे में मिश्रित पाई जाती है।

महत्वपूर्ण प्रश्न

1. भारत का उदाहरण देते हुए स्टाफ और सहायक अभिकरणों में भेद को स्पष्ट कीजिए।
2. "सामान्य प्रशासन के ब्यूरो' या स्टाफ अधिकरण से क्या अभिप्राय है? इसके विभिन्न कार्यो की विवेचना कीजिए।
3. सूत्र एवं स्टाफ अभिकरणों के बीच अन्तर समझाइये ! आधुनिक प्रशासन में उनके कार्यों की विवेचना कीजिये।
4. सूत्र अभिकरण क्या है? इसके विभिन्न प्रकारों का वर्णन कीजिए?

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

संगठन–अर्थ एवं आधार

1. 'संगठन ढाँचा और मनुष्य दोनों ही है', यह कथन है –

   अ. डिमॉक का　　ब. विलोबी का

   स. वुडरों विल्सन का　　द. फ्रेडरिक टेलर का

2. 'संगठन अपने आप में कुछ भी नहीं करता, जो कुछ भी करते हैं, संगठन के अनिवार्य अंग अर्थात् कर्मचारीगण ही करते हैं' – इस कथन के लेखक हैं–

   अ. मिल बर्ड　　ब. बियर्ड

   स. बकल　　द. इनमें से कोई नहीं

3. 'जिस संगठन में परिवर्तन रूक जाता है, वह मरणासन्न है।' यह उद्धरण है–

   अ. उर्विक का　　ब. फ्रेडरिक टेलर का

   स. ग्लेडन का　　द. लूथर गुलिक का

4. संगठन के सिद्धान्त के मुख्य प्रतिपादक हैं–

   अ. हेनरी फेयोल　　ब. एल. उर्विक

   स. फ्रेडरिक टेलर　　द. उपर्युक्त सभी

5. मूनी तथा रैले ने एक आदर्श संगठन के जिन सिद्धान्तों का उल्लेख किया, उनकी संख्या हैं–

   अ. तीन　　ब. चार

   स. पाँच　　द. छह

6. कार्यात्मक सिद्धान्त है–

   अ. विशेषीकरण का सिद्धान्त　　ब. समन्वयात्मक सिद्धान्त

   स. पद सोपान का सिद्धान्त　　द. इनमें से कोई नहीं

7. औपचारिक संगठन प्रतीक है–

   अ. यान्त्रिक दृष्टिकोण का　　ब. मानवतावादी दृष्टिकोर्ण का

   स. मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण का　　द. आधुनिक दृष्टिकोण का

8. अनौपचारिक संगठन प्रतीक है–

   अ. मानवतावादी दृष्टिकोण का　　ब. सामाजिक दृष्टिकोण का

   स. यान्त्रिक दृष्टिकोण का　　द. परम्परावादी दृष्टिकोण का

9. संगठन का वह स्वरूप जो व्यवस्थित ढंग से नियोहित तथा रूपॉकित किया गया हो और जिसे प्राधिकारी सत्ता द्वारा मान्यता दी गई है, कहलाता है–

   अ. औपचारिक संगठन　　ब. सामाजिक संगठन

   स. स्वैच्छिक संगठन　　द. राजनीतिक संगठन

10. समाज–विज्ञान के क्षेत्र में औपचारिक संगठन को लोकप्रिय बनाने का श्रेय है–

अ. मैक्स वैबर को ब. उर्विक को
स. लूथर गुलिक को द. फ्रेडरिक टेलर को

11. 'ऑनवर्ड इण्डस्ट्रीज' पुस्तक के रचयिता हैं–

अ. मूनी तथा रैले ब. हाइट
स. फ्रेडरिक टेलर द. हर्बर्ट साइमन

12. 'अनौपचारिक संगठन कोई बुरा नहीं है, वरन् एक आवश्यकता है', इस कथन के लेखक हैं–

अ. मूनी ब. रैले
स. डेविस द. चेस्टर बर्नार्ड

उत्तर

1. अ	2. अ	3. स	4. द	5. ब	6. अ	
7. अ	8. अ	9. अ	10. अ	11. अ	12. अ	13. द

संगठन–सिद्धान्त

1. 'पद सोपान निम्न तथा उच्च व्यक्तियों का श्रेणीबद्ध रूप में एक व्यवस्थित ढाँचा है।' यह परिभाषा है–

अ. अर्थ–लैथम की ब. ब्राइट की
स. साइमन की द. वुडरो विल्सन की

2. पद–सोपान अंग्रेजी शब्द का रूपान्तरण है–

अ. डायार्की का ब. हायार्की का
स. अनार्की का द. इनमें से कोई नहीं

3. पद–सोपान का दूसरा नाम है–

अ. क्रमिक प्रक्रिया ब. क्रमिक सिद्धान्त
स. क्रमिक संगठन द. क्रमिक सत्ता

4. पद–सोपान का सिद्धान्त पाया जाता है–

अ. प्रत्येक विभाग में ब. प्रत्येक संगठन में
स. प्रत्येक मन्त्रालय में द. उपर्युक्त सभी में

5. पद–सोपान की मुख्यतः विशेषता पाई जाती हे–

अ. नेतृत्व ब. सत्ता का प्रत्यायोजन
स. कार्यात्मक परिभाषा द. उपर्युक्त सभी

6. 'पद–सोपान', संगठन का एक सार्वभौमिक सिद्धान्त है।' यह कथन है–

अ. साइमन का ब. फ्रेडरिक टेलर का
स. मूने का द. वुडरो विल्सन का

7. पद–सोपान सिद्धान्त का मुख्य गुण है–

अ. कार्य–विभाजन ब. उत्तरदायित्व का प्रत्यायोजन

स. आदेश की एकता द. उपर्युक्त सभी

8. पद–सोपान सिद्धान्त का मुख्य दोष है–

अ. कार्य निपआने में देरी ब. लाल फीताशाही

स. नौकरशाही के अवगुण द. उपर्युक्त सभी

9. 'आदेश अथवा निदेशन की एकता का अभिप्राय यह है कि किसी संगठन का प्रत्येक सदस्य एक और केवल एक वरिष्ठ अधिकारी के प्रति जवाबदेय होगा।' – यह परिभाषा है–

अ. पिफनर तथा प्रिस्थस ब. लारवुड

स. हेनरी फेयोल द. फ्रेडरिक टेलर

10. 'यदि आदेश की एकता के सिद्धान्त का उल्लंघन किया जाता है तो सत्ता कमजोर हो जाएगी।' यह कथन है –

अ. हेनरी फेयोल का ब. विलोबी का

स. फायनर का द. पिकनर का

11. जिस विद्वान ने आदेश की एकता को 'सैनिक पद्धति' कहकर अस्वीकार कर दिया, वह है–

अ. एफ. डब्ल्यू टेलर ब. फ्रेडरिक पोलक

स. हेनरी मेन द. बाल्डविन

12. जिस विद्वान ने 'आदेश की एकता' के सिद्धान्त को प्रमुखता दी, वह है–

अ. फ्रेडरिक टेलर ब. हर्बर्ट साइमन

स. लूथर गुलिक द. उर्विक

13. 'नियन्त्रण का विस्तार किसी उद्यम के मुख्य निष्पादक और उसके मुख्य साथी कार्यालय के बीच सीधे और स्वाभाविक संचार की संख्या एवं क्षेत्र हैं।' यह परिभाषा है–

अ. वुडरो विल्सन की ब. विलोबी की

स. डिमॉक की द. फ्रेडरिक टेलर की

14. 'एक बड़े उद्यम के शिखर स्थित प्रबन्धक के नीचे पाँच या छह से अधिक अधीनस्थ कर्मचारी नहीं होने चाहिए। यह मत है–

अ. हेनरी फेयोल ब. उर्विक

स. लूथर गुलिक द. मुनरो

15. नियन्त्रण–विस्तार को निर्धारित करने वाले तत्त्व हैं–

अ. कार्य ब. समय

स. स्थान द. उपर्युक्त सभी

16. लूथर गुलिक ने नियन्त्रण–विस्तार के मुख्य तत्त्व बताये हैं–

अ. तीन ब. चार

स. पाँच द. छह

उत्तर

1. अ	2. ब	3. ब	4. द	5. द	6. स
7. द	8. द	9. अ	10. अ	11. अ	12. ब
13. स	14. अ	15. द	16. अ		

केन्द्रीकरण, विकेन्द्रीकरण, प्राधिकार एवं उत्तरदायित्व

1. भारत में केन्द्रीकरण का प्रतीक है –

अ. राज्य लोकसेवा आयोग ब. राजभाषा आयोग

स. योजना आयोग द. अल्पसंख्यक आयोग

2. विकेन्द्रीकरण का पर्यय है–

अ. पंचायती राज ब. ग्राम स्वराज्य

स. राजराज्य द. इनमें से कोई नहीं

3. 'प्रशासन के निम्न लि से उच्च तल की ओर प्रशासकीय सत्ता के हस्तान्तरण की प्रक्रिया को केन्द्रीकरण कहते हैं।' यह परिभाषा है'–

अ. हाइट की ब. वुडरो विल्सन की

स. वालडिन की द. इनमें से कसी की नहीं

4. विकेन्द्रीकरण के मुख्य रूप या प्रकार हैं–

अ. राजनीतिक ब. प्रशासनिक

स. उपर्युक्त दोनों ही द. उपर्युक्त में से कोई नहीं

5. कार्यात्मक विकेन्द्रीकरण के उदाहरण हैं–

अ. अखिल भारतीय चिकित्सा परिषद् ब. विश्वविद्यालय अनुदान आयोग

स. भारतीय चिकित्सा परिषद द. उपर्युक्त सभी

6. फेज्लर ने केन्द्रीकरण तथा विकेन्द्रीकरण को प्रभावित करने वाले किन तत्त्वों का उल्लेख किया है–

अ. उत्तरदायित्व के तत्त्व ब. प्रशासकीय तत्त्व

स. कार्यात्मक तत्त्व द. उपर्युक्त सभी

7. 'कोई भी राष्ट्र शासन के शक्तिशाली केन्द्रीकरण के बिना नहीं जी सकता', यह कथन है –

अ. विलोबी का ब. डेविड डी. ट्रूमैन का

स. डी. टाकविल का द. इनमें से किसी का नहीं

8. 'ऐसा प्रतीत होता है कि व्यवहार में किसी भी प्रशासकीय संगठन में इन दोनों की पद्धतियों के कुछ न कुछ लक्षण पाये जाते हैं।– यह कथन है–

अ. विलोबी का ब. डेविड डी. ट्रूमैन का
स. फ्रेडरिक टेलर का द. मुनरो का

9. विकेन्द्रीकरण के मुख्य दोष हैं–

अ. समन्वय की समस्या ब. कार्यकुशलता में कमी
स. आर्थिक नियोजन में कठिनाई द. उपर्युक्त सभी

10. विकेन्द्रीकरण के निम्नांकित गुण हैं–

अ. स्वायत्तता की भावना ब. स्वतन्त्रता की भावना
स. आत्मविश्वास की भावना द. उपर्युक्त सभी

11. केन्द्रीकरण और विकेन्द्रीकरण में से श्रेष्ठता का आधार बन सकता है–

अ. कार्यकुशलता ब. संगठन
स. पद्धति द. इनमें से कोई नहीं

12. शासन में सामान्य जनता का प्रतिनिधित्व संभव है–

अ. केन्द्रीकरण से ब. विकेन्द्रीकरण से
स. उपर्युक्त दोनों से द. उपर्युक्त दोनों में से नहीं

13. 'सत्ता की व्यवस्था की यह एक महत्त्वपूर्ण विशेषता होती है कि यह सदैव उत्तरदायित्वपूर्ण होती हैं'' यह विचार है–

अ. साइमन का ब. विलोबी का
स. वुडरो विल्सन का द. फ्रेडरिक टेलर का

14. 'उत्तरदायित्व और सत्ता की मान्यताएँ एक दूसरे से घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित है' इस मत के प्रतिपादक हैं–

अ. हेमैन ब. हेनरीमेन
स. मूनी द. रैले

15. उत्तरदायित्व के मुख्य लक्षण हैं–

अ. सत्ता का हस्तान्तरण ब. पर्याप्त सत्ता
स. कर्त्तव्य–व्यवस्था द. उपर्युक्त सभी

16. 'प्रयायोजित सत्ता उत्तरदायित्व के बीच असमानता अवाँछित परिणाम उत्पन्न करती है।' यह मत है–

अ. हेमैन का ब. फ्रेडरिक पोलक का
स. विलोबी का इ. ब्लंशली का

उत्तर

1. स	2. अ	3. अ	4. स	5. द	6. द
7. स	8. ब	9. द	10. द	11. अ	12. ब
13. अ	14. स	15. द	16. द		